# AYUDYAKAND
# RAMAYAN

श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत

# अयोध्याकाण्ड-रामायण

Text as Nagri Pracharini Sabha Edition.

**गोस्वामीजी की साहित्यिक जीवनी और**

**भूमिका साहित**

Prescribed for High School Examination 1933-34.


सम्पादक—

**अध्यापक रामरत्न**

**चन्द्रहंस शर्मा विशारद**



प्रकाशक—

**रत्नाश्रम, आगरा**

पञ्चमावृत्ति ] [ बारह आना

श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत

# अयोध्याकाण्ड-रामायण

Text as Nagri Pracharini Sabha Edition.

## गोस्वामीजी की साहित्यिक जीवनी और भूमिका सहित

for

High School Examination 1933-34.

सम्पादक—

अध्यापक रामरत्न

चन्द्रहंस शर्मा विशारद

High School Examination

प्रकाशक —

रत्नाश्रम, आगरा

पञ्चमावृत्ति ] [ बारह आना

# महाकवि तुलसीदास

संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लयौ।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीकि तुलसी भयौ॥

—नाभाजी

## जन्मकालीन परिस्थिति।

उस समय संसार की सब से पुरानी सभ्यताभिमानिनी जाति का जीवन घोर संकट में फँस चुका था। प्रेम, सौहार्द्र और सहानुभूति के पवित्र बन्धन जीर्ण हो चुके थे। ईर्षा, द्वेष, कलह और वाह्याडम्बरों ने आर्ष-कालीन निःश्रेयस और अभ्युदय वाले आदर्शों को एक दम विलुप्त कर दिया था। अहम्मन्यता-जन्य मिथ्या ज्ञान का चारों ओर प्रसार हो रहा था। इन्द्रिय-जन्य विलासिता ने जीवन की प्रगति ही बदल दी थी। समाज की कुत्सित और घृणित भावनाएँ स्वार्थ-क्षेत्र में ताण्डव नृत्य कर रही थीं। "गुरु शिष अन्ध बधिर कर लेखा, एक न सुनहिं एक नहिं देखा" के चारों ओर ज्वलन्त उदाहरण दिखाई पड़ रहे थे। वैदिक धर्म की शाखा प्रशाखाओं की मत-विभिन्नता शत्रुता के रूप में परिणत हो चुकी थी। साहित्य में कुत्सित और विलासी भावों ने स्थान पाकर जनता के हृदय और मस्तिष्क को कलुषित कर दिया था उस समय की आन्तरिक स्थिति तो ऐसी थी ही, वाह्य परिस्थिति भी नितान्त निरापद नहीं थी। तीन चार सौ वर्ष पर्य्यन्त क्रमागत आक्रमणों से भारत के अधिकांश विभागों में यवन-प्राधान्य स्थापित हो चुका था। एक ओर सैनिक-शक्ति का केन्द्र राजा मानसिंह व राजा पृथ्वीसिंह अकबर के दरबारी होने का फ़ख़ करते थे; दूसरी ओर राजा बीरबल और टोडरमल मुग़ल साम्राज्य

के विस्तार का उपाय ढूढ़ निकालने में तत्पर थे। राष्ट्र के कवि, मुग़ल सम्राट् के यशोगान का, और पण्डित, सम्राट् की विद्वत्परिषद् में वाद-प्रतिवाद का अवसर पा जाने को पूर्ण सौभाग्य समझते थे। इस प्रकार जब कि हिन्दू जाति का भाग्याकाश घोर अनिष्टान्धकार से व्याप्त था, उसी समय प्रकाशमान पिण्ड के रूप में महाकवि गोस्वामी तुलसीदास का प्रादुर्भाव हुआ।

## प्रारम्भिक जीवन।

प्रायः महाकवि का आविर्भाव काल संवत् १५८९ विक्रमी माना जाता है। इनका जन्म स्थान राजापुर है और कुछ लोग तारी गाँव को यह गौरव देते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि अभिजित नक्षत्र में जन्म होने के कारण माता पिता ने इनको त्याग दिया था। इनके पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी था। दीनबन्धु पाठक की रत्नावली कन्या के साथ इनका पाणि-ग्रहण हुआ था।

अपनी स्त्री के साथ इनका प्रगाढ़ प्रेम था। उसका आँखों से ओझल होना इन्हें असह्य था। अनेक आग्रह होने पर भी रत्नावली को उसके पिता के घर न भेजा। एक बार भाई के साथ बिना आज्ञा लिए ही देवी चली गई। जब तक वह पहुँच ही पाई थी कि महाराज जी जा धमके। इस कारण से रत्नावली को बड़ी ग्लानि हुई। उसी अवस्था में यह उद्गार उनके हृदय से निकल पड़ेः—"मेरे इस पार्थिव-शरीर में आपका इतना स्नेह है, यदि यही स्नेह श्रीरघुनाथ जी के चरणकमलों में होता तो बेड़ा पार था।"

बस, यहीं से हमारे चरितनायक के विकास का श्रीगणेश है। जो प्रेम की अविरल धारा रत्नावली के लिए संचालित हो रही थी, वही अब से हरि-पद-पंकजों की ओर बहने लगी। उनके हृदय-पटल-खुल गये, माया का

पर्दा उठ गया, मोहतम हट गया रत्नावली का आरोप सारे विश्व में हुआ। व्यष्टि, समष्टि रूप में प्रकट हुई। प्रणय ने भक्ति का भेष बदला।

एक छोटे से परिवार से "बसुधैव कुटुम्बकम्" वाले हुए। संसार-त्याग के पीछे आपने पुन: अपने गुरु की शरण ली। यहीं पर इनका पालन-पोषण हुआ था और यहीं पर इन्हों ने शिक्षा पाई थी। विद्वानों और साधुओं का सत्संग किया। पहले के अनिच्छित रूप से प्रवेश किये हुए संस्कार धीरे धीरे जागृत हो चले। सरस्वती के इस लाड़िले पुत्र ने नाना पुराण, निगम और आगमों का अध्ययन किया। जो कुछ देखा, हृदय तक पहुँचा; जो कुछ सुना मस्तिष्क में घुमड़ाया। "जहाने सूरत का ज़र्रा २ जमाल ( ए ) मानी का आईना" बन गया। इस प्रकार जीवन क्षेत्र की दुर्भेद्य अगम्य घाटियों को पार कर तुलसी ने इस विस्तृत मैदान में विचरण किया। गुरु-प्रसाद से, "हिय के विमल-बिलोचन" उघरे और 'भव-रजनी के दुख-दोष' दूर हुए। आत्मा में अमरत्व का बीजारोपण हुआ और हृदय में अमृत-तत्त्व का अंकुरोद्भव। ऐसे ही समय में इनका रचनाकाल आरम्भ होता है। रामचरित-मानस ही इनकी सर्व प्रथम और सर्व प्रिय रचना है। गुसाईं जी ने भौमवार चैत्र शुक्ला नवमी सं० १६३१ वि० को अयोध्या में यह महाकाव्य प्रारम्भ किया था। पीछे किसी मुख्य हेतु से काशी चले गये, वहाँ पर मानस की पूर्त्ति हुई। रामचरित-मानस के अतिरिक्त इनका "विनय पत्रिका" विनय सम्बन्धी महाग्रन्थ है। भाषा क्लिष्ट होने पर भी इसमें पद-लालित्य और माधुर्य्य की कमी नहीं है। रचना-शास्त्र-विशारदों की दृष्टि में यह गोस्वामी जी की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इनके अतिरिक्त गीतावली, दोहावली, कवितावली, कृष्णगीतावली; रामललानहछू, वैराग्य-संदीपनी बरवारामायण, पार्वतीमंगल, जानकी-मंगल, रामाज्ञाप्रश्न, कलिधर्म-निरूपण आदि अनेक रचनाएँ हैं।

## वस्तु और उसका विकास

महाकवि ने जिस मुख्य वस्तु ( मूल ढाँचे ) पर अपना दिव्य और भव्य रचना-प्रसाद खड़ा किया है वह न तो स्वकल्पित है और न किसी

पौराणिक व लौकिक साधारण आख्यायिका का प्रकारान्तर है इसकी मूल सामिग्री उसी आदि काल से ली गई है, जिसे चिरन्तन से श्रद्धा और भक्ति के साथ भारतवर्ष परम आदर्श मानता चला आ रहा है, जिससे भारत के मस्तिष्क को प्रकाश, हृदय को रस और आचरण को दृढ़ता प्राप्ति हुई है; जहाँ पर समस्त देश का अनन्त-कालीन-ज्ञान, अनुभव और समग्र प्रकृति समष्टि रूप से व्यक्त हुई है; जिसमें चिरकाल के इतिहास प्रवाहित विचार, सम्यक् प्रकारेण प्रतिबिम्बित हुए हैं; वह है इक्ष्वाकुवंशीय मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र की गृह-धर्म स्थापना और उसका विकाश। तुलसीदास जी इसी भित्ति पर महल बनाते हैं। अपनी वस्तु पर गोस्वामीजी को विश्वास है—

"एहि महुँ रघुपति नाम उदारा।
अति पावन पुरान स्रुति-सारा॥"
"भनिति भदेस वस्तु भलि बरनी।
राम-कथा जग-मङ्गल करनी॥"

"प्रिय लागिहि अति सबहिं मम, भनिति राम जस संग"

मुख्य वस्तु के अतिरिक्त आपकी रचना में अनेक छोटे छोटे वस्तु भाग हैं, जो प्रकारान्तर से या सीधे किसी पुराण या दूसरे ग्रन्थों से लिये हुए हैं; और व्यवहार, नीति, धर्म तथा ज्ञान के ऐसे वचन हैं जो किसी न किसी पुराण, स्मृति अथवा निगम आगम-सम्मत हैं, जिनसे आदिकारिक वा आनुषंगिक वस्तुभाग के विकास या परिपाक में पूर्ण सहायता मिली है। मूल वस्तु को अपने आदर्शों के उपयुक्त और आदर्शों को लक्ष्य के अनुकूल बनाने में निर्माण-विद्या का पूर्ण कौशल दिखाया है। पहले सबका विकास अपने अपने केन्द्र में हुआ है। पीछे विकास की धारा सहस्रमुखी होकर चारों ओर से फूट निकली है, सबकी एकही ओर की प्रगति है, सबका एक ही लक्ष्य है। और वह है—"मानव जीवन की परिपूर्णता"

## रचना-सौष्ठव

वस्तु-निर्देश और उसके विकास करने में कवि पूर्ण स्वतन्त्र होता है, परन्तु अन्य बातों में साहित्यशास्त्र के चिरमान्य नियमों का यथाशक्ति पालन करने के लिये उसे वाध्य होना पड़ता है।

अलंकार शास्त्रियों ने उत्कृष्ट रचना के लिये तीन गुणों की आवश्यकता बतलाई है, शक्ति, व्युत्पत्ति और अभ्यास। पूर्व संस्कार-जन्य दैवी चमत्कार ही शक्ति है। परम श्रद्धावान् भगवद्भक्ति की दृष्टि में यह पूर्व संस्कार-जन्य शक्ति भगवद्-कृपा के सिवाय और क्या है ?

"जापर कृपा करहिं जन जानी।
कवि-उर-अजिर नचावहिं बानी॥"

सर्व प्रिय राम चरित-मानस का निर्माण ही इनका प्रथम कौशल है। उसमें कहा है:—

"कवि न होउँ नहिं चतुर प्रबीनू।
सकल कला सब विद्या हीनू॥
आखर, अरथ अलंकृत नाना।
छन्द प्रबन्ध अनेक बिधाना॥
भाव—भेद रस—भेद अपारा।
कवित–दोष गुन–बिबिध प्रकारा॥
कवित—बिबेक एक नहिं मोरे।
सत्य कहौं लिखि कागद कोरे॥"

आखर, अर्थ, अलंकार, छन्द प्रबन्ध, भाव और रसों का ज्ञान, रचना के लिये कितना आवश्यक है और गोस्वामी जी इनका ज्ञान न रखने के लिये कोरे काग़ज़ पर लिखकर शपथ कर रहे हैं। कुछ लोग समझेंगे, कि उनका यह महज़ तकल्लुफ़ है, कोरा दिखावा है, शायरों की सी आजिज़ी है, किन्तु दोहावली में कहा है:—

'बचन वेष से जो बने सो बिगरे परिनाम।
तुलसी मन ते जो बने बनी बनाई राम' ॥

अन्तःकरण के विरुद्ध कोई बात कहना एक महाकवि के ही नहीं, किन्तु महात्मा के सदाचार के सर्वथा प्रतिकूल है। आपकी रचनाओं के अनुशीलन करने के पश्चात् यह बात और भी दृढ़ हो जाती है। सम्भव है "नाना पुराण निगम आगमों के सिद्धान्त के साथ अलंकार-शास्त्र का भी अध्ययन किया हो। परन्तु विवेक ( ज्ञान ) से यहाँ व्यावहारिक ज्ञान ( स्वानुभूत ज्ञान ) से मतलब है, केवल वाचिक ज्ञान से ही कोई कविता करने में समर्थ नहीं होता। विद्वत्समाज में अनेक ऐसे व्यक्ति हैं जो व्युत्पत्ति लाभ करने पर काव्य नहीं कर सकते। काव्य विवेक न होने के साथ साथ "सकल कला अरु विद्या हीना" से भी यही तात्पर्य है। कवि-कल्पित हीनता या कृत्रिम आजिज़ी नहीं है; यह वह पवित्र और सत्य भावनाएँ हैं जो अपने अस्तित्व पर गर्व न रखने वाले हरिभक्त के हृदय से स्वभावतः उत्पन्न होती हैं। वस्तुतः रचना के स्वानुभूत ज्ञान और अभ्यास के अभाव में कवि की स्वाभाविक प्रतिभा का चमत्कार कैसा बढ़ गया है। सचमुच इनके शुद्ध और मुक्त उर-अजिर में सरस्वती ने अद्‌भुत नृत्य किया है। इसी महाकाव्य के आदि में कवि ने काव्य का यह सुबोध लक्षण किया है:—

"सरल कवित कीरति बिमल जेहि आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराय रिपु जो सुनि करहिं बखान॥"

सीधे साधे शब्दों में गंभीर भावों का अभिव्यक्त होना कवि-कुशलता का परिचायक है।

"आगे राम लखन पुनि पाछे।
तापस भेष बिराजत आछे॥
उभय मध्य सिय सोहति कैसी।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥

राम लखन सिय प्रीति सुहाई।
बचन अगोचर किमि कहि जाई॥
खग मृग देखि मगन मन होई।
लिये चोरि चित राम बटोही॥"

इन साधारण शब्दों में कितने सूक्ष्म, अलौकिक तथा दार्शनिक भावों का समावेश है। सरल कवित-प्रसाद-गुण रामचरित मानस में जाले की भाँति पूरित है और विमल कीर्ति का तो कहना ही क्या है। रामायण के उत्कृष्ट पात्र राम, भरत, दशरथ, लक्ष्मण, सीता, सुमित्रा,आदि की कौन कहे—गुह, केवट, शवरी जैसे वनवासी व्यक्तियों के कीर्ति-पट कितने असाधारण और मनोमुग्धकारी हैं। यहाँ तक कि समाज विध्वंसक-अनीति-विधायक राक्षस गणों के चित्रण भी गोस्वामीजी के कीर्ति-पट को ज़रा भी मलिन नहीं कर सके हैं। इसका संकेत कवि के वचनों में इस प्रकार हुआ है:—

"सखर सकोमल मञ्जु, दोष रहित दूषण सहित"

खर (तीक्ष्ण) के चरित चित्रण होने पर भी यह कोमल और दूषणांकित (दूषण सहित) होने पर भी दोष-रहित है। ऐसी सरल-कविता में अभिव्यक्त विमल-कीर्ति के वश में यदि सुजान न हों तो उनके सुजानपन की रक्षा ही कहाँ हो सकती है? ऐसे चित्रकार के चित्र-पट को देखते ही दृष्टा का अन्तःकरण—चाहे वह वैरी भी हो-चित्रकार के अन्तकरण में तन्मय हो जाता है, सादर सराहना करता है:—

'वैरिहु राम बड़ाई करहीं।'

## भाव-व्यञ्जकता

काव्य शास्त्र में अनेक संचारी व स्थायी भावों का उल्लेख है। मन के उद्वेग, चित्त की वृत्तियों का या अन्तःकरण का धर्म ही भाव है।

"भाव-भेद रस-भेद अपारा"

इन्हीं अपार भावों की अभिव्यक्ति पर ही काव्य के उत्कर्ष का दायित्व है। महाकवि की रचना में भावों की अभिव्यक्ति का अपूर्व कौशल है। देखियेः—

"भैया कहहु कुशल दोउ बारे;
तुम नीके निज नयन निहारे।"

इस सीधे-सादे शब्दों में प्रसाद्-गुण के साथ कितना लालित्य और माधुर्य्य है। वात्सल्य-भाव से सराबोर अयोध्या के वृद्ध सम्राट् राजा दशरथ के हृदय का कैसा कोमल और स्निग्ध चित्र है। राजा जनक के दूत—एलची-नहीं धावक-हरकारे—राम, लक्ष्मण के कुशल समाचार लेकर अयोध्या में आये हैं। अत्यन्त हित से झटपट पास बिठाकर मधुर, मनोहर वचनों में पूछते हैं;—"भैया! दोनों बारे सकुशल हैं?" इतना ही पूछ कर उत्तर की प्रतीक्षा नहीं करते। आगे कहते हैं "तुमने अपनी आँखों से भी देखा है।" पुत्र प्रेम में तल्लीन राजा की मनोवृत्ति किस प्रकार तरंगित होती है? पत्र से उन्हें सन्तोष नहीं। वह धावकों की आँख में आँख मिलाकर स्वयं देखना चाहते हैं! "दर्शनोत्सुक्य" का कितना प्रबल भाव है? दूत उत्तर देते हैंः—

किशोर अवस्था है; साँवला और गोरा रंग है, धनुष बाण लिये हुए विश्वामित्र के साथ हैं इस चिन्हारी से काम न बना, कहते हैं "जो देखा तो कहौ स्वभाऊ" इतने पर मनोवेग स्थिर हुआ और लम्बी साँस के साथ निकल पड़ाः-

"जा दिन ते मुनि गये लिवाई।
तब ते आजु साँच सुधि पाई॥"

दूसरा उदाहरण लीजिए। इस महा-नाटक का आनन्द-दृश्य सामने है। राम के ब्याह के पीछे "नित नव मंगल मोद बधाये" हो रहे हैं। कलोल करती हुई रिधि-सिधि-सम्पति की नदियाँ अवधअम्बुधि में गिर रही हैं। रामचन्द्र का मुख-चन्द्र देखकर सब विधि से पुर-लोग सुखी हैं।

मनोरथ बेलि फलित देखकर सब सखी सहेली सहित माताएँ मुदित हैं। राम के रूप, गुण, शील और स्वभाव को देखकर राजा प्रमुदित हैं। "सब पायउ प्रभु, पद रज पूजे" वाले युग में एक चिन्ता हृदय में तरंगित हो उठी है। राज-सूत्र राम के हाथ में दे दिया जाय, इसके लिये भी गुरु ने आज्ञा दे दी। तैयारी होने लगी। दासी मन्थरा को यह सब अच्छा न लगा, हृदय में विरोधी भाव जागृत हुए। ईर्षा और द्वेष ने उसके मस्तिष्क में खलबली मचा दी। इस आयोजन को विफल करने के लिये युक्ति सोची। रानी कैकेयी से जाकर कहा।

देखती नहीं हो राजा का कपट जाल ! विलास में मग्न हो, यदि राम राजा हो गये तो तुम्हारा कल्याण नहीं ? सुनते ही कैकेयी का अन्तःकरण आन्दोलित हुआ ! हृदयस्थ भावों के नितान्त विरुद्ध बात असह्य हुई। क्रोधावेश हो आया

"पुनि अस कहसि कबहुँ घर फोरी।
तो धरि जीह कढ़ावहुँ तोरी॥"

कहते कहते आवेश कम हो चला। कुछ तर्क और विवेक ने अपना काम किया—निष्कर्ष निकलाः—

"काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय विशेष पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसिकानि॥"

ऐसी कुचाल करने के लिये काने, खोरे होने का दोष ही पर्याप्त था। स्त्री और स्त्रियों में भी चेरी होने से वह दोष (कारण) और भी प्रबल होगया, तो भला ऐसी कुटिलता क्यों न करें ? स्वभाव से ही ऐसे लोग ऐसा करते हैं। उन बातों को कहते ही रानी मुस्करा गई यह मुस्कराहट उपेक्षा सूचक है। इतने पर भी रानी से चुप नहीं रहा गया, कहने लगी—

"प्रियबादिनि, सिख दीन्हेउ तोहीं,
सपनेउ तो पर कोप न मोहीं॥"

थोड़ी देर पहले क्रोध के आवेश में जीभ निकलवाती थी फिर उपेक्षा-जनक मुस्कराहट से उसका अनादर किया। काने, खोरे आदि वाक्य कहने के बाद कोई भी क्रियापद, मुस्कराहट के समान, उपेक्षा-जनक भाव को व्यक्त नहीं कर सकता। फिर उपेक्षा का भाव भी पूरी तरह स्थिर न रहा। प्रिय वादिन्-व्यङ्गपूर्ण सम्बोधन के बाद "स्वप्न में भी, तेरे ऊपर कोप न होने वाले" निराकरणात्मक वाक्य से प्रेम-भाव का उदय हो आया है और इससे स्पष्ट भी हो गया—

"राम तिलक जो साँचेउ काली।
माँगु देउँ मन-भावत आली॥"

अभी तक मन्थरा के प्रति क्रोध, प्रेम में अवश्य परिवर्तित होगया है किन्तु राम-तिलक में कोई आशंका नहीं है। परन्तु ज़रा सब्र कीजिये देखिये वह भी हुआ—

"भरत सपथ तोहि सत्य कहु, परिहरि कपट दुराव।
हर्ष समय विस्मय करसि, कारण मोहि सुनाव"॥

क्रोध या उपेक्षा-जनक भाव वाले वाक्यों को कहकर रानी शान्त होकर बैठ रहती तो क्या था? मन्थरा की दाल गलना कठिन था। किन्तु मुँह लगी ढीठ दासी कैकेयी के स्वभाव से परिचित थी पहला ही वाग्वाण लक्ष्य पर मार कर उसका परिणाम देखती रही। पहले क्रोध, फिर उपेक्षा, फिर स्नेह, पीछे आशंका, एक ही बात से प्राचीन संस्कार-जन्य हृदयस्थ भावों का पहले प्रावल्य, साम्य, फिर शैथिल्य। यहाँ तक उनमें आशंका का अंकुरोद्‍भव होगया तभी तो 'परिहरि कपट दुराव साँच कहु, तोहि भरत शपथ'। यह राज-महल के विलास में डूबी हुई अस्थिर स्वभाववाली स्त्री की चित्तवृत्ति का कैसा अच्छा दिग्दर्शन है। कवि का कौशल इस बात से और भी बढ़ गया है। कवि पहले रानी के ही मुख से कहलाता है "उसमें स्त्री व

चेरी" उसी रानी के चरित्र में उसी भाव से कथित स्त्रीत्व-प्रदर्शन कैसी अच्छी तरह से कराया है।

साहित्य-शास्त्र में प्रेम के भावों को अस्फुट रूप से प्रगट होना विहित समझा गया है हनुमान राम का संदेश सीता को सुनाते हैं—

"तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा।
जानत प्रिया एक मन मोरा॥
सो मन रहत सदा तुव पाहीं।
जानु प्रीत-रस इतनेहि माहीं॥"

इन थोड़े शब्दों का सीता पर ऐसा प्रभाव पड़ता है:—

"मगन प्रेम तनु सुधि नहिं तेही"

स्वभावोक्ति का भी नमूना देखिये:—

राम सीता और लक्ष्मण वन यात्रा के समय जब किसी गाँव के पास होकर गुजरते हैं तो आबाल वृद्ध वनिता उनके दर्शनों के लिये सारा काम काज छोड़ कर दौड़ पड़ते हैं। अपूर्व सौन्दर्य पर मुग्ध होकर गद्-गद् होजाते हैं। इन यात्रियों का रूप क्या है! जादू है:—

"रामहिं देखि एक अनुरागे।
चितवत चले जाहिं सँग लागे॥
एक नयन मगु छबि उर आनी।
होहिं सिथिल तन मन-बर बानी॥

दो०—एक देखि बटछाँह भलि डासि मृदुल तृनपात।
कहहिं गवाँइय छिनुक स्रम गवनव अबहिं कि प्रात॥

एक कलस भरि आनहिं पानी।
अँचइय नाथ कहहिं मृदुबानी॥"

कैसा अपूर्व स्वागत है ? कैसा अनन्य प्रेम है ? राम भी इस स्वागत की अवहेलना न कर सके। इस प्रेम की उपेक्षा किस सहृदय पर की जा सकेगी। राम तो कृपालु सुशील बिसेषी हैं।

प्रिय वचन सुन कर और अति प्रीति देख कर बट की शीतल छाया में घड़ी भर विश्राम किया। इसी घड़ी भर में सरलस्वभावा ग्रामवधूटियों को इक्ष्वाकुवंशीय राजवधू से दो दो बातें करने का अवसर मिल गयाः—

"सीय समीप ग्रामतिय जाहीं।
पूछत अति सनेह सकुचाहीं॥
बार बार सब लागहिं पाये।
कहहिं बचन मृदु सरल सुभाये॥
राजकुमारि बिनय हम करहीं।
तिय सुभाय कछु पूछत डरहीं॥
स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी।
बिलगु न मानब जानि गवाँरी॥
राजकुँवर दोउ सहज सलोने।
इन्ह तें लहिं दुति मरकत सोने॥

... ... ... ... ...

... ... ... ... ...

कोटि मनोज लजावनिहारे।
सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी।
सकुच सीय मन महुँ मुसुकानी।"

उनके अपूर्व प्रेम ने सीता जी के सरल हृदय पर अधिकार कर लिया है। स्नेहमय मंजुल बानी का उत्तर दिये बिना नहीं बनता प्राणपति के समक्ष मुँह खोल कर उत्तर देना भी कठिन हैः—

"दुहुँ सकोच सकुचति बन बरनी।"

अन्ततोगत्वा, बालमृगनैनी ने सकुच करके मधुर वचनों में यह तो कह दियाः—

"सहज सुभाय सुभग तन गोरे।
नाम लषन लघु देवर मोरे॥"

परन्तु अब आगे सांकेतिक बातचीत हुई।

"बहुरि बदनबिधु अंचल ढाँकी।
पियतन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजनमंजु तिरीछे नैननि।
निजपति कहेउ तिन्हहिं सियसैननि॥"

इस इशारे में क्या ही जादू है। वह लोट पोट होगईं भगवती जनक-नंदिनी की मानस-प्रसूत प्रेम सरिता के अपूर्व प्रवाह में डुबकी लगाकर भोलीभाली ग्राम बधूटियाँ कृतकृत्य हुईं। पद-पंकजों में गिरकर आशीर्वाद देने लगीं:—

"सदा सोहागिनि होहु तुम्ह, जब लगि महि अहि सीस"

## रसोत्कर्ष

रसोत्कर्ष से ही रचना सौष्ठव में प्रखरता आती है। कविता का प्राण ही रस है। गोस्वामी जी ने स्वनिर्मित कविता कामिनी के कलेवर में, रस प्राण भरने के कौशल में कमाल हासिल किया। जहाँ पर जिस रस का वर्णन है, सजीव चित्र खड़ा कर दिया है। राम-वन-गमन, सुमन्त के प्रत्यागमन और भरत के अयोध्या-प्रवेश के अवसर पर सचमुच करुणा-रस अयोध्या में आकर उतरा है। ससैन्य भरत के वन-गमन का समाचार पाने पर निषाद-राज और लक्ष्मण के वक्तृत्व वीरता की प्रतिमूर्ति हैं। सीता राम का प्रथम सम्मिलन, शृंगार का कितना मधुर विकास है। शिव-पार्वती के

ब्याह में हास्य रस का कैसा स्फुरण है। लंकाकाण्ड के युद्ध में अद्भुत,क्रोध,, करुण और वीर रस के कैसे उद्गम निकल पड़ते हैं। रामचरित मानस में सब रसों का सम विकास है। विनय में करुणा और शान्ति का उद्गम है। रामलला नहछू में श्रृंगार का उद्दीपन है। हनुमान बाहुक, चालीसा और संकटमोचन में वीर रस का प्राधान्य है। जानकी-मंगल और पार्वती मंगल में श्रृंगार की सरसता है। कवितावली के अन्त में करुणा मूर्त्तिवंत है।

## अलंकृत-प्रयोग

कविता-कामिनी का शब्द और अर्थ शरीर, रस-प्राण और अलंकार भूषण है। महाकवि ने अपनी रचना को बड़ी कारीगरी के साथ बिविध अलंकारों से भूषित किया है आपके रूपक सौंदर्य के प्रतिरूप और उपमाएँ अनूठी हैं। इनके प्रयोग की शैली चित्ताकर्षक है।

कमल का सौंदर्य आपको इतना रुचिकर है कि कहीं गिरा अनिल 'मुख पंकज' में घिर जाती है। कहीं 'भानुकुल-पंकज के भानु' से प्रार्थना की जाती है। कहीं 'पद-कमल' की शरण के लिये मुनि-मन 'मधुप' हो जाता है। कहीं सनाल जलज 'शशिहि सभीत' जयमाल देते हैं। कहीं 'पद-पंकज' में प्रेम न रखने वाले अगाध भव-सिन्धु में पड़ते हैं। कहीं 'पद-पंकज' से प्रीति न करने वाले संसार में दीन,मलीन,दुखी होकर भटकते फिरते हैं। कहीं कमल पराग,गुरु-पद-रज के रूप में दिखाई देता है कहीं पद-पद्म-पराग अहिल्या का उद्धार करता है। कभी 'सजनी शशि में सम शील उभै नवनील सरोरुह खिलते हैं और कभी 'अनंदित लोचन-भृंग अरबिन्द सों आनन रूप मकरन्द' का पान करते हैं। कभी 'पंकज-पाणि में धनुहीं शर' होता है और कभी 'पद-कंजन-पनहीं मंजु' बनती हैं और कभी कभी तोः—

"नव कञ्ज लोचन, कञ्ज मुख, कर कञ्ज पद कञ्जारुणम्॥"

यहाँ तक कि सौंदर्य-समष्टि ही कंज का रूप धारण कर लेता है और बहुत हुआ तो उसे किसी अंश में 'कंजारुणम्' होजाना पड़ता है।

ऐसे अनेक प्रयोग हैं। एक ही उदाहरण देकर इस विषय को समाप्त करते हैं।

"साधु-चरित सुभ सरिस कपासू।
निरस विसद गुन-मय फल जासू॥
सो सहि दुख पर छिद्र दुरावा।
बंदनीय जेहि जग जस पावा॥"

कपास का फल नीरस होता है किन्तु विशद और गुनमय भी होता है। साधु-चरित भी गुन-मय और विशद होता है। वाह्यरूप में वह भी नीरस होता है। 'गुन' पद में श्लेष है 'गुणमय' साधु पक्ष में, 'तन्तुमय' कपास पक्ष में है। साधु और कपास दोनों की तुलना है दोनों का वाह्य रूप एकसा है। दोनों के आन्तरिक गुण एक से हैं। दोनों ही स्वयम् दुःख सहकर दूसरों के छिद्र छिपाते और दुःख मिटाते हैं। इसलिये दोनों ही संसार में बन्दनीय और यश-पात्र हैं। कपास एक भौतिक वस्तु है। उसके नीरस, विशद और पर-छिद्र दुराने के गुण और व्योपार के वाह्येन्द्रिय गम्य होने से पाठक भली प्रकार जानते हैं। साधु के चरित्र, गुण और व्यापार अन्तरिन्द्रिय गम्य हैं इसलिये ज्ञात से अज्ञात के गुण और व्यापार बोध कराने में कैसी सुबोध प्रणाली का अनुसरण किया है। कैसा वैज्ञानिक ढंग है। ज्ञात उपमान के गुण और व्यापार से, अज्ञात उपमेय के गुण और व्यापार का बोध है।

## उपसंहार।

महाकवि ने अपने काव्य-रसामृत द्वारा शताब्दियों से सूखे हुए हिन्दू जाति के हृदय को प्लावित किया। अद्भुत रचना-कौशल द्वारा कालान्तर से भूले हुए आर्ष-कालीन आदर्शों से लाभ उठाने का मार्ग प्रशस्त किया शुष्क तर्क-मूलक ज्ञान को सदाचार-मूलक निष्काम-भक्ति में मिला दिया। कर्म और संन्यास को अपने ही क्षेत्र में अंकुरित कराके चरम विकास में पहुँचाया। गृह-धर्म में विश्व धर्म का दर्शन हुआ। पार्वती, सीता, मन्दोदरी

और अनसूया के रूप में नारी-धर्म की मूर्त्ति खड़ी की। सुमित्रा और कौशिल्या की गोद में मातृत्व की रक्षा हुई लक्ष्मण और भरत के रूप में भ्रातृत्व प्रतिष्ठित हुआ। दशरथ में पितृ-धर्म और राम में राज्य-धर्म ने विकास पाया। मैत्री को निषाद से, भक्ति को केवट से जीवन मिला। हनुमान के हृद्पद्म से सेवकत्व सौरभित हुआ। यहाँ तक कि परिपूर्ण मानव-चरित्र की प्राण प्रतिष्ठा का अनुष्ठान स्वयं तुलसीदास द्वारा इस रूप में हुआ--

कबहुँक हौं यहि रहिन रहौंगो।

श्री रघुनाथ कृपालु कृपा ते सन्त स्वभाव गहौंगो॥
यथा लाभ सन्तोष सदा काहू सों कछु न कहौंगो।
पर-हित निरत निरन्तर मन-क्रम बचन नेम निबहौंगो॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान सम सीतल मन पर गुन नहिं दोष कहौंगो॥
परिहरि देह-जनित चिन्ता दुख सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो॥

# अयोध्या काण्ड रामायणम्

# उपोद्घात

## रामायण क्या है ?

नवीन भारत के लिये, आर्षभारत वह अतुलनीय और अप्रतिम मीरास ( पैत्रिक-सम्पत्ति ) छोड़ गया, जिसके बल से अवनति के गहरे आवर्त में पड़ी हुई दीन-हीन हिन्दू जाति आज भी संसार की वैभवसम्पन्न जातियों के सामने साभिमान सिर उठा सकती है; जिसके कारण अति जीर्ण-शीर्ण वृद्ध भारत मरते मरते भी अपने दिव्य तेज से नयी मायावी सभ्यता के चकाचौंध को एक दम रूखा कर देता है; जिसके प्रभाव से आज भी संसार के पवित्र और निष्कपट हृदयकोश अनुपम रत्नों से भरे पड़े हैं; वह आर्य जाति का रामायण नामक राष्ट्रीय कोश है। इस प्राचीन कोश की सर्वाङ्गपूर्ण सम्पत्ति, जैसे जैसे व्यय हुई बढ़ती ही चली गई। इस कोश में इतिहास भी है और काव्यतत्व भी; निगमागम सम्मति है, और लौकिक चरित्रों की इयत्ता भी। किसी राष्ट्र की सच्ची सम्पत्ति उस देश का प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य ही है, न कि ईंट पत्थर। साहित्य से आदर्श मिलता है; आदर्श से चरित्र गठन होता है; चरित्र से स्वावलम्बन, धैर्य्य, वीरता आदि मनुष्योचित गुण उत्पन्न होते हैं।

इन्हीं गुणों से व्यक्तियों के हृदय बाँधे जाते हैं जिससे समाज-संगठन होता है। इस प्रकार के समाजों की आत्मीयता का एकीकरण, अथवा यों कहिये 'नीर क्षीर न्यायेण' राष्ट्र निम्र्माण का हेतु होता है। उत्कृष्ट-राष्ट्र-निम्र्माण, उत्कृष्ट आदर्शों पर निर्भर है। इस प्रकार के आदर्श उत्कृष्ट साहित्य से ही मिलते हैं।

हमारा रामायण नामक महाकाव्य ऐसे ही उच्च आदर्शों का भाण्डार है। रामायण के आदर्श दूसरी जातियों की सम्पत्ति को

हड़प करने तथा उन पर प्रभुता जमाने के लिये किसी प्रकार का आयोजन वा संगठन नहीं कराते, वरन् मनुष्योचित पवित्र प्रेम और गृहधर्म का उपदेश देते हैं। वह पिता पुत्र में, पति पत्नी में, भाई भाई में, धर्म और प्रेम का सम्बन्ध कराते हैं। 'पिता की आज्ञा मानना', 'भाइयों का आत्मत्याग', 'आदर्श-पति-पत्नीत्व', 'राजा प्रजा के पारस्परिक 'सम्बन्ध व कर्त्तव्य' यही रामायण के महाकाव्य का मुख्य विषय है।

इस परम पवित्र साहित्य-सरित का स्रोत श्री वाल्मीकि जी की ओजस्विनी लेखनी से प्रसूत हुआ है। अनन्त काल से लेकर आज तक, इस विशाल-धारा से छोटा-मोटा प्रवाह लेकर अगणित व्यक्तियों ने अनेक नद-नदी-सरों की रचना की है। इसी सिलसिले में प्रातःस्मरणीय गो० तुलसीदास ने भी एक परम सुन्दर दिव्य मानसरोवर निर्म्माण किया है; जिसका नाम राम-चरित-मानस है; यथाः—

"राम-चरित-मानस यहि नामा। सुनत स्रवन पाइय बिस्रामा॥
मन-करि विषय-अनल-बन जरई। होय सुखी जो यहि सर पाई॥
सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद-पुरान उदधि, घन साधू॥
बरसहिं राम सुयस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥
लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोई स्वच्छता करै मल हानी॥
प्रेम भक्ति जो बरनि न जाई। सोई मधुरता सीतलताई॥
सो जल सुकृत सालि हित होई। राम भक्त-जन जीवन सोई॥
मेधा महिगत सो जल पावनु। सिमिटि श्रवन मगु चलेउ सुहावनु॥
भरेउ सो मानस सुतल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥

सुठि सुन्दर संवाद बर बिरचेउ बुद्धि बिचार॥
तेइ इहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥

सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरखत मन माना॥

इस प्रकार सुमति भूमि ........ आदि २ गोस्वामी जी ने मानस-सर की रचना की है। इस सर के सात सोपान ( काण्ड ) हैं। इस तालाब का वर्णन बाल-काण्ड में तुलसीदास जी ने बड़ी उत्तम रीति से किया है। गोस्वामीजी के 'शास्त्रीय विचार', 'लौकिक व्यवहारों की अभिन्नता' 'भाषा पर अटल अधिकार' और 'अपूर्व कवित्व शक्ति के नवीन आविष्कार' इस रचना को ऐसा भव्य बना चुके हैं कि "गिरा अनयन नयन बिनु बानी" ही कहना पड़ता है।

## रामायण का सम्मान वा पद

जो हो, राम-चरित-मानस हिन्दू-जाति की अमूल्य सम्पत्ति, धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक शिक्षाओं का भाण्डार, मानसिक तथा आत्मिक आनन्द का समुद्र और काव्य-गुणों का अनुपम आगार है। साधारण अक्षराभ्यासियों से लेकर धुरंधर विद्वानों तक नित नयी श्रद्धा के साथ इसका पाठ करके आनन्द प्राप्त करते हैं। रामायण के लिये हिन्दू समाज में जितना आदर है, उसके लिये हृदय में जितना ऊँचा स्थान है, अन्य किसी ग्रंथ के लिये नहीं। इस ग्रंथ के छोटे और बड़े सैकड़ों प्रकार के नित नये संस्करण निकले और निकल रहे हैं, परन्तु इन संस्करणों में:—

## अनेक दोष

भी आगये हैं। जहाँ तहाँ लोगों ने क्षेपक कथाएँ गढ़ कर चिपकादी हैं। चिपकाने वालों का कुछ भी अभिप्राय रहा हो, परन्तु तुलसीदास जी की कविता से यह नवीन गढंत ज़रा भी जोड़ नहीं खाती। ऐसा मालूम पड़ता है कि सोने के सितारों में किसी ने कंकड़ी मिलादी हो।

दूसरी बात खटकने वाली यह है कि कुछ अहम्मन्य पंडितों ने तुलसीदास जी की भाषा शुद्ध करने का प्रयास किया है। भाषा

के जीवन-मूल प्रचलित शब्दों को शुद्ध संस्कृत बनाया गया है। काव्य की मूल भाषा के 'स' 'ब' को शुद्ध करण 'श' 'व' किया है। कहीं २ मुहाविरों की भी ऐसी ही छील-छाल हुई है। रामायण की—

भाषा

में अवधी और बैसवाड़ी शब्दों और मुहाविरों का ही प्रायः बाहुल्य है। कवि ने हर भाषा के शब्दों को तोड़-मोड़ कर इच्छानुसार बना डाला है; वेही शब्द उनकी कविता के बे जोड़ नगीने हो गये हैं—

'करब' 'जानब' 'भरब', लुनिय' होउब' 'कहब' 'कोहाब' 'गरीब' 'निवाजू' 'साहिब' 'ठाहर' 'फुर' 'ढरके' 'खुमारू' 'गुदारा' 'बाट परै', 'कठौता' 'बारह बाट' 'वियाने' 'रजाई' ग्रामीण आदि प्रयोग भी इनकी कविता में उच्च पद को प्राप्त हुए हैं। जहाँ पर जिस—

रस

का वर्णन आया है, उसका सजीव चित्र खड़ा कर दिया है। राम-वन-गवन, सुमन्त के प्रत्यागमन और भरत के अयोध्या-प्रवेश-स्थल पर सचमुच "करुनारस-कटकई" अयोध्या में आकर उतरी है। ससैन्य भरत के बनागमन का समाचार पाने पर 'निषाद राज और लक्ष्मण के व्याख्यान' वीरता की मूर्त्ति हैं। 'वशिष्टजी का भरत को समझाना' शान्ति का सर्वोत्तम पाठ है। शृङ्गार का सर्वोत्तम वर्णन होने पर भी वह भक्ति और प्रेम का उद्गम हो गया है, स्त्री-बच्चों के सम्मुख भी किसी व्याख्याता को कभी ज़रा भी संकोच करने की ज़रूरत नहीं पड़ती। तुलसीदास जी ने पुराण और इतिहास सम्बन्धी विचारों के अतिरिक्त वेदान्त आदि शास्त्रीय गूढ़ विचारों को जिस खूबी से दिखाया है, उससे बढ़कर लौकिक विचारों के चित्रखींचने में सिद्धहस्तता प्राप्त की

है। इनकी मनन शक्ति, स्मरणशक्ति और निरीक्षणशक्ति अत्यन्त तीव्र और बुद्धि बड़ी ही कुशाग्र थी। जो—

## उपमाएँ

इन्होंने कविता में घटित की हैं, वह इसका स्पष्ट प्रमाण हैं। रूपक घटाने में वह अद्वितीय कवि थे। कहीं २ इनके रूपक शुद्ध, कहीं २ उत्प्रेक्षा, उपमा तथा अन्य अलंकारों से संकरित हैं। अन्य अलंकारों का भी स्थान स्थान पर प्रयोग किया है, जो साहित्य गवेषणा करने वालों के मनन करने योग्य है यमक और छेकानुप्रासों पर अधिक ज़ोर नहीं दिया है। इस महाकाव्य में विविध प्रकारों के छन्दों का प्रयोग न करके केवल—

## दोहा और चौपाई

नामक मात्रा वृत्तों से काम लिया है। कहीं २ हरगीतिका व गीतिका छन्द भी आए हैं। अस्तु काव्य-सम्बन्धी विशेष विवेचन तो इस छोटी सी भूमिका में नहीं हो सकता। ऐसी विवेचना का नमूना श्रीयुत मिश्रबन्धु कृत हिन्दी के इतिहास में:—

"जे पुर ग्राम बसहिं मग माहीं।
तिनहिं नाग-सुर-नगर सिहाहीं॥"

आदि चार चौपाइयों के काव्य-सम्बन्धी विश्लेषण में देखिये अब हम तुलसीदास जी के चरित्र-चित्रण की ओर चलते हैं। यह ठीक है कि ऊपर जिन २ बातों की ओर संकेत किया है सम्पूर्ण रामायण से सम्बन्ध रखती हैं, परन्तु मुख्य लक्ष्य:—

## अयोध्या काण्ड

ही की ओर रहा है-यह काण्ड रामचरित मानस का मेरुदण्ड है। अन्य काण्डों से इसकी रचना बहुत ही बढ़ कर है। श्रीयुत मिश्रबन्धुओं ने नवरत्न पृष्ठ ४९ में लिखा है—"अयोध्या-

काण्ड की रचना केवल भाषा साहित्य की ही नहीं बरन संसार के समस्त साहित्यों की रत्न है। ऐसी मनोमोहिनी-कविता हमने किसी भाषा में नहीं देखी। इस काण्ड को उलटते ही जान पड़ता है कि मानों पाठक आनन्द-सागर में निमग्न हो जाता है। अलौकिकानन्द देने वाली और सुन्दर काव्य की इतनी उत्तम और प्रचुर सामग्री किसी अन्य ग्रन्थ में नहीं" यह काण्ड राम जी के राज-तिलक की तैयारी से प्रारंभ होता है। मंथरा कैकेयी के द्वारा रस भंग कराती है। राम वन को जाते हैं और दशरथ सुरपुर को। भरत ननिहाल से लौटकर राम को मनाने जाते हैं। राम-भरत समागम होता है। भरत पादुका लेकर लौट आये हैं। राज्यासन पर खड़ाऊँ रक्खी जाती हैं। भरत नंद्रिग्राम में तप करते हैं और मंत्री राजकाज।" यही इस काण्ड का कथानक है। सब से प्रथम हम प्रधान नायक—

## रामचन्द्र जी

को ओर अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। महर्षि वाल्मीकि जी ने रामचन्द्र जी के असाधरण गुणों का कोई दो पृष्ठ में वर्णन किया है। तुलसीदास ने रामचरित्र का निष्कर्ष "प्रसन्नता या न गताभिषेकतः" श्लोक द्वारा अयोध्या काण्ड को प्रारंभ ही में कह दिया है कि अभिषेक के समाचार पाकर जिनके चहरे पर प्रसन्नता के चिह्न नहीं दिखाई दिये और बनोवास की खबर से जो जरा भी चिन्तित नहीं हुए, आदि आदि। इस धैर्य और सदा एक रस गुण का विकास उस समय होता है जब रामजी माता के पास बनोवास का समाचार लेकर पहुँचते हैं। रामचन्द्रजी के चहरे पर जरा भी म्लानता नहीं है—वह असाधारण दिव्यतेज से दैदीप्यमान हो रहा है—फिर भला माता कैसे किसी भावी दुर्घटना का अनुमान कर सकती है। बार बार सुन्दर वदन देख कर आनन्दित होती है और पूछती है "सुकृत और शील की सीमा, मुद मंगलकारी लगन कब है?" भैया नहाकर कुछ शीघ्र खा लो देर

होगई, तब पिता के पास जाना।" वात्सल्य स्नेह का कैसा सजीव चित्र है। कवि कहता है:—

मातु बचन सुन अति अनुकूला, जनु सनेह सुरतरु के फूला।
सुख-मकरंद भरे श्री मूला, देखि राम मन भँवर न भूला॥

सचमुच भूलने की प्रचुर सामग्री थी, परन्तु रामजी के असाधारण मन-भँवर पर उसका कुछ प्रभाव न पड़ा। वह उतने स्नेह-सुख लीन हो कर भी अपने कर्त्तव्य-पथ से जरा विचलित नहीं हुए। सूखे से मुँह से कह बैठे—

"पिता दीन मोहि कानन राजू।
जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥"

यही क्यों! अनेक स्थलों पर रामचन्द्र जी की गम्भीरता का पता चलता है—

राम के चित्त की स्थिरता का रहस्य जानने का सबसे अच्छा अवसर भरत समागम के समय चित्रकूट पर मिलता है। राम-निश्चिन्त होकर बैठे हैं। भरतागमन के समाचार सुनते ही चिन्ता हुई। भरत के आने का कारण क्या ? 'क्या राज्य निष्कंटक करने भरत आये?" यह भाव उनके हृदय में स्वप्न में भी नहीं। परन्तु फिर भी "प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं", ऐसी कौनसी बात है जिससे समुद्र सा गंभीर रामजी का चित्त स्थिर नहीं है ? उन्हें अपने सुख दुख की चिन्ता नहीं है, अपने जीने मरने का प्रश्न नहीं है, वह है भरत के प्रति अतुलित वात्सल्य-प्रेम।

"इत पितु बच उत बंधु संकोचू"

वाक्य से स्पष्ट है कि कहीं ऐसा न हो भ्रातृ-प्रेम के वश पिता के वचनों को तोड़ना पड़े। जिस आज्ञा के कारण सहज स्वभाव से ही राज्य-लक्ष्मी को लात मार दी, बिलखती हुई माता को राज-महल में छोड़ा, अयोध्या उजाड़ हुई, पिता का प्राणान्त हुआ,

राज्य भर में खलबली मची. उस अटल आज्ञा को भ्रातृ-स्नेह के मुकाबिले में तराजू पर चढ़ा दिया "इत पितु बच उत बंधु संकोचू।" कहीं ऐसा न हो भ्रातृ-स्नेह के कारण "पितु-बचन" तोड़ने पड़ें। धन्य भ्रातृ-प्रेम ! धन्य !!! रामजी के जी में यही खलबली मची हुई है। लक्ष्मण इसे न देख सके, राम की चिन्ता ने उन्हें अधिक चिन्तित कर दिया। लक्ष्मण बड़े भाई से बहुत डरते थे। उनके सामने मुँह खोलना सहज नहीं था--पर लखन लखेउ प्रभु हृदय खँभारू" तो अपने को न सँभाल सके। रामजी का हृदय कुछ पल तक डाँवाडोल रहा। जब यह स्मरण हुआ कि भरत साधु हैं. सयाने हैं. कहे में हैं. तब उनके जी में समाधान हुआ। लक्ष्मण इस बात को न समझे उनका सरल और उत्तेजित स्वभाव उन्हें दूसरी ओर बहा ले गया। समझे कि राज्य-मद से अंधे होकर भरत ने राम पर चढ़ाई करदी। वह स्वार्थवश पुराने प्रेम को भूल गये। बस, एक बड़ी भारी भड़काने वाला नीति और ऐतिहासिक तत्त्वों से भरा हुआ व्याख्यान दे डाला। व्याख्यान बड़ा ही प्रभावशाली और वीरोचित था। किसी मनुष्य का हृदय उसे सुनकर उत्तेजित हुए बिना नहीं रहता; परन्तु राम का गम्भीर हृदय इनकी युक्तियों और उत्तेजनाओं से ज़रा भी विचलित नहीं हुआ। लक्ष्मण व्याख्यान देते हुए समझते जाते होंगे कि मेरी प्रबल और निष्कपट युक्तियों को भाई समझ रहे हैं; शीघ्र ही भरत से युद्ध करने की आज्ञा मिली जाती है। परन्तु सरल हृदय राम धीरे से कहते हैं:--

"कहो तात तुम नीति सुहाई। सबते कठिन राज-मद भाई ॥
जो अँचवत मातहिं नृप तेई। नाहिन साधु-सभा जेहि सेई ॥
सुनहुँ लखन भल भरत सरीखा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीखा ॥
भरतहिं होइ न राज-मद, बिधि हरि हर पद पाय।
कबहुँ कि काँजी-सीकरनि, छीर-सिन्धु बिनसाय ॥

आदिक अनेक वाक्यों से पता चलता है कि भाई का कितना विश्वास था। वह भरत-स्वभाव की स्थिरता को कहाँ तक समझे हुए थे कि हर-हरि और विधि-पद से भरत को राजमद नहीं हो सकता। इस कारण राम के चित्त में अस्थिरता नहीं हुई। हुई तो केवल इसलिये कि, प्यारे भरत, प्रेम-बस लौटाने या साथ चलने का हठ न करें; नहीं तो कुछ ठिकाना नहीं। सब मामला बिगड़ जायगा। जब भरत सामने आये तो राम, प्रेम में ऐसे विह्वल हो गये:—

उठे राम अति प्रेम अधीरा।
कहुँ पट कहुँ निषंग धनुतीरा॥

राम का हृदय शील, संकोच और दयालुता से कूट कूट कर भरा हुआ है। जब राजा ने राज्यभार देने का आयोजन किया तो इनके दिल में बड़ा ही संकोच हुआ। चारों भाई, साथ साथ खेले। कर्णवेध, यज्ञोपवीत विवाह साथ साथ हुआ परन्तु विमल वंश में यह ही अनुचित है कि 'अनुज विहाय बड़ेहि अभिषेकू।' नीति और लोक उचित समझे या अनुचित, शास्त्र विधि कहे या निषेध, पर रामजी का स्वार्थत्यागी हृदय तो इसे बिलकुल अनुचित समझता है वह सोचते हैं सब भाई एक से, क्यों किसी की हक़तलफ़ी हो! अथवा छोटे बड़े किसी में से किसी एक को राजा बना देना चाहिये, बड़े ही को क्यों?'

यही क्यों, जब राजभवन में दशरथ बेहोश पड़े हुए थे, उन की दशा बहुत ही करुणा-जनक थी, रामजी ने क्रोधित कैकेयी से पूछा 'महाराज की ऐसी दशा क्यों है?' निष्ठुर कैकेयी से सारा प्रसंग—अपने देश निकाले और भरत को राज्य पाने का—सुना। देखिये, क्या हुआ,—

"मन मुसिक्याय भानु-कुल-भानू।
राम सहज आनन्द-निधानू॥"

बोले" ................................................

....................................................

भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू ।
बिधि सब बिधि मोहि सन्मुख आजू ॥"

क्या कहना है, रामजी के त्याग और धैर्य का ऊपर थोड़ा सा परिचय है—उनके अगणित गुणों का यहाँ उल्लेख करना सर्वथा असम्भव है । और जिन

भरत

के सम्बन्ध में तुलसीदास जी कह चुके हैं—

अगम सनेह भरत रघुबर को । जहँ न जाय मन बिधि हरि हर को ॥
जो न होतु जग जन्म भरत को । अचर सचर चर अचर करत को ॥

रामजी भी श्रीमुख से कह चुके हैं—

'भरत कहे में, साधु, सयाने ।' इस छोटी सी भूमिका में उन भरत का क्या अधिक परिचय दिया जा सकता है । ननिहाल से लौट कर भरत ने देखा 'अयोध्या चौपट हो गई, राजा का प्राणान्त हो गया और राम का देश निकाला । उस समय भरत की करुणा जनक अवस्था का चित्र खींचना कवि की कल्पना से बाहर है । कैकेयी सम्वाद सुना चुकी, मंथरा भी आ पहुँची, शत्रुघ्न ने उसमें लात जमा दी और घसीटा । 'भरत जी ने इसे पसन्द नहीं किया, उसे छुड़वा दिया—भरत की साधुता का कैसा अच्छा परिचय है । आगे जब राजा की अन्त्येष्टि से सब लोग निवृत्त हुए । बड़ी भारी सभा हुई । भरत को राज्यासन पर बैठाने का प्रस्ताव हुआ । भरत जब आना-कानी करने लगे, तो राज नीति-विशारद वशिष्ठ जी ने एक बड़ा व्याख्यान दे डाला । अनेक प्रमाणों से बतलाया कि पिता की उचित और अनुचित कैसी ही आज्ञा हो, माननीय है और मैं भी अनुरोध करता हूँ । माता कौशल्या ने भी समझाया । सार यह है कि 'पिता की आज्ञा'

'गुरु का अनुरोध', 'माता का आग्रह' और 'सभा का निश्चय'; यह तो सब कुछ—परन्तु "प्राण प्यारे भाई का देश निकाला और मैं राजा बनूं।" इस भाव को उनके जी से कोई न निकाल सका बड़ी नम्रता से उनके प्रस्ताव का विरोध करते हुए युक्ति युक्त बात कही—

"गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी।
सुनि मन मुदित करिय हित जानी॥"

..............................

..............................
यद्यपि यह समझतु हों नीके।
तदपि होत परितोष न जी के॥"

क्यों ?

"पितु सुर पुर, सियराम बन, करन कहहु मोहि राज।"

..............................................................

"हित हमार सिय-पति सेवकाई। सो हरि लीन मातु कुटिलाई॥
मैं अनुमान दीख मनमाहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं॥
सोक-समाज राज केहि लेखे। लखन राम सिय पद बिनु देखे॥

..............................................................

..............................................................

धन्य भ्रातृ-प्रेम और धन्य त्याग! संसार के इतिहास में क्या कहीं भी ऐसा उदाहरण मिल सकता है! त्याग और प्रेम से भरा हुआ भरत का यह व्याख्यान बार बार मनन करने योग्य है।

अन्त में सत्य-हृदय की विजय हुई, नीति और इतिहास दुम दबाकर भाग गये! भरत की बात का विरोध करने की किसी को हिम्मत नहीं हुई। निश्चय हुआ—सब मिल कर राम को मना लावें। सब बन को गये, रामजी से सम्मिलन हुआ:—

भरत जी ने रामचन्द्र जी से लौटने के लिये अश्रुपूर्ण नेत्रों से विनय की। राम जी ने सारा भार भरत पर रख दिया। इस स्थल पर जो आपस में वार्त्तालाप हुआ, मनन करने योग्य है।

बड़ी ही मार्मिक घटना है। प्रेम पूर्ण दो हृदय किस प्रकार एक दूसरे की रक्षा करते हुए अपने अपने कर्त्तव्यों के पालन करने को दृढ़ हैं। अन्त में राम की विजय हुई, किसी तरह से भरत को लौटने के लिये राजी कर लिया। भरत राम की खड़ाऊँ सिर पर धारण कर अयोध्या की ओर लौटे। पर राम जब बनोवासी हैं, भ्रातृ-भक्त भरत कब राजलक्ष्मी का उपभोग कर सकते हैं। उन्होंने भी अयोध्या के निकट नंदिग्राम में बलकल-बसन धारण कर बनोवासी की भाँति रहना प्रारम्भ कर दिया।

यही दोनों राम और भरत अयोध्या काण्ड के प्रधान पात्र हैं। पर—

## लक्ष्मण

जी का चरित्र भी कुछ कम उल्लेखनीय नहीं है। यह रामचन्द्रजी के सबसे निकटस्थ और सहज-संगी थे। बड़े भाई को पिता के तुल्य समझते थे। इन्होंने सुना कि राम बन जा रहे हैं, दौड़े हुए भाई के पास गये। मार्ग में शंका करते हुए जाते थे—

"रखहिं भवन कि लेइहिं साथा।"

लक्ष्मण में कहाँ शक्ति थी कि भाई की आज्ञा के विरुद्ध कुछ भी कर सकें। रामचन्द्र जी ने बहुतेरा समझाया कि हर तरह से तुम्हारा घर पर रहना ही उचित है—इन्होंने स्पष्ट कह दिया:—

"गुरु पितु मातु न जानों काहू।
कहहुँ स्वभाव नाथ पतियाहू॥
मोरे सबै एक तुम स्वामी।
दीनबन्धु उर अंतरजामी॥"

अपनी अप्रतिम श्रद्धा और प्रेम से–अनेक कारण अयोध्या में रहने के होने पर भी–इन्होंने राम से वन चलने की आज्ञा लेली। स्त्री और माता को त्याग, भाई के साथ तपस्वी बन कर रहने में जीवन को सफल समझा। यह हृदय के बड़े सरल और स्पष्ट वक्ता थे—सुमंत राम को पहुँचा कर वन से लौट रहे थे, राम 'पिताजी से क्षेम कुशल कहना' समझा रहे थे. लक्ष्मण ने उस समय बहुत कठोर वचन कहे। राम ने सुमंत को शपथ दिलाई कि महाराज से लक्ष्मण की बात न कहना। दीन-वचन कहना तो लक्ष्मण जानते ही न थे; लक्ष्मण-परशुराम सम्वाद पढ़ने में यह बातें स्पष्ट हो जाती हैं। क्रोध भी इन्हें बहुत शीघ्र आता था. और चट-पट भी कर बैठते थे कैकेयी ने मंथरा को असंतुष्ट देखकर कहा:—

"हँसि कह रानि गाल बड़ तोरे।
दीन लखन सिख अस मन मोरे॥

भरतागमन के समय चित्रकूट पर जो इन्होंने भाषण दिया उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"कहँ लगि रहिय सहिय मन मारे।
नाथ साथ धनु हाथ हमारे॥
आय बना भल आज समाजू।
प्रगट करौं रिस पाछिल आजू॥

अस्तु। इन्होंने जिस प्रेम और भक्ति से भाई की सेवा की, वर्णन नहीं की जा सकती।

सिय सुमन्त भ्राता सहित, कंदमूल फल खाय।
सयन कीन्ह रघुवंश-मनि, पाँय पलोटत भाय।
उठे लखन सोवत प्रभु जानी।
कहि सचिवहिं सोवन मृदुबानी॥

कछुक दूरि सजि बान सरासन ।
जागन लगे बैठि वीरासन ॥

क्या कहना है ! कैसी अपूर्व भ्रातृ-भक्ति है । लक्ष्मण जैसा आदर्श पुत्र होने का श्रेय आदर्श माता—

## सुमित्रा

ही को है । सुमित्रा सचमुच गृहलक्ष्मी थी । आदर्श गृहस्थी के लिये जिन जिन गुणों की आवश्यकता है, सुमित्रा में कूट कूट कर भरे हुए थे । दूरदर्शिता, धर्म-निष्ठता तथा कर्त्तव्य परायणता का पाठ लक्ष्मण जी ने इसी से सीखा होगा । जिस समय रामजी को राजी कर लक्ष्मण माता के पास विदा माँगने गये – समझे थे कि माता कहीं बाधा न डाल दे । परन्तु आदर्श माता सुमित्रा ने स्पष्ट कह दिया ।

"तात तुम्हार मातु वैदेही ।
पिता राम सब भाँति सनेही ॥
जो पै सीय राम बन जाहीं ।
अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ॥"

धन्य माता ! क्या संसार में ऐसा उदाहरण और कहीं मिलेगा ? सुमित्रा राजा दशरथ की दूसरी रानी थी, पहिली का नाम था—

## कौशल्या ।

रामचन्द्र इन्हीं के पुत्र थे । कौशल्या के धैर्य को देखने के लिये साहस की आँख चाहिये । जब इनको मालूम हुआ 'राज्य के बदले मेरे बेटे को बनोवास मिला ।' तो स्नेह और धर्म ने थोड़ी देर के लिये इनके मस्तिष्क में रण-रंग मचा दिया । धर्म और स्नेह के विचारों में टक्करें हुईं—

"राखहुँ सुतहि करउँ अनुरोधू, धर्म जाय अरु बंधु विरोधू ।
कहउँ जान बन तौ बड़ हानी, संकट सोच विबस भई रानी ॥"

थोड़ी ही देर में धर्म की विजय होगई। दूरदर्शिता, गम्भीरता, धैर्य्य आदि सेनापतियों ने बड़े साहस के साथ अपना काम किया। खेत धर्म के हाथ रहा-स्नेह ने नम्र होकर क्षमा प्रार्थना करली और अपने हाथ से धर्म के मस्तक पर विजय तिलक कर दिया। संधिपत्र के अनुसार कौशल्या ने फर्मान निकाला:—

"तात ! जाउँ बलि कीन्हेउ नीका।
पितु आयसु सब धर्मक टीका॥
राज दैन कहि दीन्ह बन मोहि न दुख लवलेस।"

केवल चिन्ता है तो इस बात की कि:—

"तुम बिन भरतहिं भूपतिहि प्रजहिं प्रचंड कलेस।"

इन के हृदय में ईर्षा द्वेष आदि विकारों का तो नाम निशान भी नहीं था। सौतेली माता ने, पुत्र को देश निकाले का दण्ड दे दिया; परन्तु उसी सौतेली माता की ओर संकेत कर के यह कहती हैं:—

"जौ पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।"

धन्य कौशल्या ! तेरे विशाल हृदय को धन्य है !

यदि आपको कौशल्या के धैर्य्य का इससे भी अधिक परिचय पाना है तो वहाँ चलें, जहाँ दैव-दलित दशरथ पड़े हुए हैं। सुमन्त ने आकर राम के न लौटने का समाचार सुना दिया है; दशरथ जी के आशा-तंतु बिल्कुल छिन्न भिन्न होगये हैं; ऐसे विकट समय में कौशल्या ने अपने धीरज को सँभाला और समयानुसार राजा को समझाया:—

"नाथ समुझि मन करिय बिचारू।
राम बियोग पयोधि अपारू॥

करनधार तुम अवध जहाजू ।
चढ़ेउ सकल प्रिय बनिक समाजू ॥
धीरज धरिय तो पाइय पारू ।
नाहिंत बूड़हि सब परिवारू ॥"

पुत्र बन में चले गये। पति मृत्यु-शैय्या पर पड़े हैं—चारों ओर निराशाओं के काले बादल छाये हुए हैं—देवी, अपने को सँभाले हुए औरों को सँभाल रही है—धन्य धैर्य ! और जिसः—

कैकेयी

ने यह सारा भण्ड-बिगोया कराया, उस में भी बुद्धि की कमी नहीं थी; समझदार थी। रामचन्द्रजी पर इसका वैसा ही स्नेह था जैसा भरत पर। जिस दिन जलभुन कर मंथरा ने राम-राज्योत्सव का समाचार कैकेयी को सुनाया था—मंथरा को आशा थी कि कैकेयी को अवश्य बुरा लगेगा, परन्तु रानी कहती हैः—

"सुदिन सुमंगल दायक सोई ।
तोर कहा फुर जा दिन होई ॥
राम तिलक जो साँचेउ काली ।
माँग देउँ मनभावत आली ॥"

परन्तु मंथरा कब निराश होती है, वह बड़ी काइयाँ थी। उसने कुटिल-नीति से अपना काम सँभाला। अनेक प्रकार की युक्तियों से रानी को उलटा पुलटा समझा कर पक्का कर लिया। मंथरा के गूढ़-कपट-प्रिय वचन सफल हुए। रानी राम-राज्य में अपना अमंगल समझने लगी। बस कौशल्या और कैकेयी के स्वभाव में यही अन्तर था—कौशल्या बड़े मार्मिक स्थलों पर भी अपने कर्त्तव्य पथ से नीचे न गिरी। विवेक और विचार शक्ति को नष्ट नहीं होने दिया। सोना जितने बार तपाया झिल-मिलाता हुआ ही निकला। परन्तु कैकेयी स्थिर बुद्धि वाली नहीं

थी, वह पहले कुछ ठीक रही, मगर जैसे ही कलुषित-हृदय मंथरा ने विविध कौशलों द्वारा उस पर अपना जादू फेरा तो अपने पुराने विश्वास रूपी बारूद के ढेर में दियासलाई लगादी; श्रद्धा और स्नेह रफूचक्कर होगये।

राम ही को नहीं, उस प्राण से प्यारे पति को भी जिसे सर्वस्व समझती थी–अपना शत्रु समझने लगी, सरल–स्वभाव कौशल्या षड्यन्त्र कारिणी दीखने लगी, राम में अनेक अवगुण उत्पन्न होगये।

"राम साधु ! तुम साधु सयाने !
राम मातु मैं भलि पहिचाने !
जस कौसिला मोर भल ताका।
तस फल उनहिं देहुँ करि साका॥"

इतनी अनस्थिर स्वभाव की होते हुए भी वह राज-नैतिक दिमाग़ वाली थी। उसके हृदय पर दिमाग़ का पूरा अधिकार था जिस समय रामचन्द्र राजा के पास गये हैं और कैकेयी से उनकी ऐसी दशा होने का हेतु पूछा है, उस समय कैकेयी ने अपने भावों को किस साहस के साथ छिपाया है। जब राम को कारण ज्ञात हुआ तो माता से कहा "नहीं, यह तो बड़ी तुच्छ बात है, मुझ से कोई बड़ा अपराध हुआ है ! तब पुत्रवत्सला मा बेटे से कैसी बातें कहती है:—

'तुम अपराध जोग नहिं ताता।
जननी जनक बन्धु सुखदाता॥
राम सत्य सब जो कछु कहहू।
तुम पितु-मातु बचन रत अहहू।
पितहि बुझाइ कहउ बलि सोई॥
चौथेपन जिहि अजस न होई॥
तुम सम सुअन सुकृत जेहि दीने।
उचित न तासु निरादर कीने॥"

आजकल की गूढ़ राज-नीति में इस प्रकार के व्याख्यान देना बड़ी कला समझी जाती है । मालूम पड़ता है, बिस्मार्क या विलसन की गुरु किसी जन्म में कैकेयी ही रही होगी । अस्तु ।

हम रामायण की एक और देवी, जिसके नाम से आज भी "भारत भारत ही है—" जिसे पुराना भारत आदि शक्ति महा-माया का अवतार समझता है—२० करोड़ हिन्दुओं की जिह्वा की नोंक पर जिसने अपना आसन बनाया है वह है प्रातः-स्मरणीया पूज्य पतिप्राणा—

## सीतादेवी

रामचन्द्र बन की तैयारी कर रहे हैं। सीता जी को चिन्ता हुई कि कहीं मुझे छोड़ न जायँ । साथ चलने के लिये बहुत कुछ अनुनय-विनय की । रामचन्द्र जी ने वन के घोर दुःख और विकट अवस्था समझा कर इन्हें रोकना चाहा । घर रहने में इन्हें किसी प्रकार का दुःख भी नहीं होता, माता कौशल्या इन्हें बहुत प्यार करती थीं—

"नैन पुतरि इव प्रीत बढ़ाई ।"
"दीप बाति नहिं टारन कहऊँ ॥"

परन्तु यह संसार के सारे संकटों को, प्यारे के वियोग-दुःख के लवलेश के तुल्य भी नहीं समझती थीं । एक ही बात में सारे व्याख्यान का उत्तर दे दिया—

मैं सुकुमारि ! नाथ बनजोगू !! तुम्हहिं उचित तप ! मोकहँभोगू !!!

बात थोड़ी सी है, परन्तु आर्य सभ्यता का रहस्य कूट कूट के भरा है:—हृदयेश पर विपत्ति, मैं सुख से रहूँ । स्वामी कंद-मूल-फल खाकर वन में मारे मारे फिरें और मैं राज महल में राज्यो-चित—भोग भोगूँ । जो कुछ भी हो—सुख, या दुःख, जीवन या मृत्यु, पति के साथ साथ—

"तन, धन, धाम, धरनिपुर-राजू ।
पति-विहीन सब सोक-समाजू ॥
नाथ साथ साथरी सुहाई ।
प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई ॥
कंद मूल फल अमिय अहारू ।
अवध-सौध सत सरिस पहारू ॥"—

जिसके लिए है, उसका जीवन-रहस्य संसार को आश्चर्य में डालने वाला क्यों न हो ?

ऊपर के चरित्रों के विकास का कारण महाराज दशरथ की सत्य-प्रियता है—

'प्रान पुत्र दोउ परिहरेउ बचन न दीनेउ जान' ।

अन्य चरित्रों की ऐसी विशेषताएँ दिखाई गई हैं जिनका अयोध्या काण्ड से अधिक सम्बन्ध है—परन्तु राजा दशरथ के चरित्र की कुछ प्रारम्भिक बातें ऐसी हैं, जिनके उल्लेख किये बिना काम नहीं चल सकता। यह स्वभाव के बहुत ही उदार और गो ब्राह्मण के रक्षक थे। परोपकार के लिये तो इनका सर्वस्व ही अर्पित था। जब जब देवताओं पर भीड़ पड़ती थी वह दैत्यों से बहुत ही तंग आजाते थे तो उन्हें राजा दशरथ की सहायता की ज़रूरत पड़ती थी। कैकेयी भी प्रायः युद्ध में साथ जाती थी। एक बार ऐसे ही किसी युद्ध में कैकेयी की सहायता से विजय हुई। उसी के उपलक्ष में दो बरदान दिये, जो बहुत दिन तक धरोहर रखे रहे और समय पर काम आए।

एक बार राक्षसों के अत्याचार से देश में खलबली मच गई। यज्ञ, हवन, वेदपाठ आदि बन्द होने लगे। पवित्र तपोवन राक्षसों के क्रीड़ा-स्थल हो गये। सब ऋषियों ने सलाह करके विश्वामित्र जी को अयोध्या भेजा। राजा ने इनका बड़ा स्वागत किया और आने का कारण पूछा। ऋषि ने तपोवन की सब व्यवस्था कह सुनाई

और राम को माँगा, उस समय दशरथ जी बड़े चक्कर में पड़ गये, कहा—

"माँगहु भूमि धेनु धन कोषा।
सर्वस देहुँ आज सह रोषा॥
देह प्राण ते प्रिय कछु नाहीं।
सोउ मुनि देहुँ निमिष इक माहीं॥"

इतना तो बात की बात में दे सकता हूँ। पर राम के देने में कुछ संकोच है। मैं ससैन्य चल सकता हूँ। राक्षसों से लड़ कर उनके अत्याचार से अपने देश को बचा सकता हूँ। परन्तु राम सुकुमार हैं, बच्चे हैं "घोर मायावी असुरों के मुकाबिले में उन्हें भेजना" समझ में नहीं आया—

"चौथे पन पायेउ सुत चारी।
विप्र बचन नहिं कहेउ सँभारी॥"

अस्तु। थोड़ी देर के लिये सर्वस्व दे सकने पर भी पुत्र के न देने का विचार जी में रहा। वशिष्ठ जी ने समझाया कि भारत-माता की छाती से राक्षसी अत्याचार, यदि तुम्हारे पुत्र के द्वारा दूर हो जाय तो तुम सा भाग्यवान कौन होगा ? राजा का मोह दूर होगया देश और धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राण से प्यारे पुत्रों को ऋषि के अर्पण कर दिया। धन्य त्याग !

इतने गुण होते हुए भी एक अवगुण था—राजा ने कई विवाह किये। इसी कारण गृह-कलह हुआ।

वृद्ध अवस्था में भी वह संयमी न रहे। कामान्धता से कैकेयी की चालों को न समझ सके, उससे प्रतिज्ञा कर बैठे। परन्तु प्रतिज्ञा को किस प्रकार निबाहा, यह इतिहास के पत्रों पर स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है—

"जियन मरन फल दशरथ पावा। अंड अनेक अमल जस छावा॥
जियत राम-बिधु बदन निहारा। राम-बिरह मरि मरन सँभारा॥"

जो हो, इस राजवंश के परिचय के साथ २ अन्य कुछ व्यक्तियों का परिचय देना भी उचित है—जिनके कारण रामायण की कथा में सोने में सुगन्ध आगई है। जिनमें से एक तो—

## सुमन्त

जो, अयोध्या के राजवंश के सच्चे सेवक और हितैषी थे। महाराज की गुप्त-मंत्रणाएँ प्रायः इनसे ही हुआ करती थीं। यह बहुत ही उदार और सहृदय थे। रामचन्द्र जी इन्हें सदैव पूज्य दृष्टि से देखते थे।

"तुम पुनि पितु सम अति हित मोरे।
बिनती करहुँ तात कर जोरे॥"

रामचन्द्र को पहुँचाकर जब वन से सुमन्त लौटे तो उनकी बहुत ही शोचनीय अवस्था हो गई, इसका वर्णन कल्पनातीत है; एक उदाहरण से कवि ने उस समय की अवस्था का चित्र खींचा है—

"जिमि कुलीन तिय साधु सयानी।
पति-देवता कर्म मन बानी॥
रहै कर्म बस परिहरि नाहू।
सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू॥"

क्या ही दारुण वेदना है। इससेः—

"विवरन भयो न जाइ निहारी।
मारेसि मनहुँ पिता महतारी॥
हानि गलानि विपुल मन व्यापी।
यमपुर-पंथ सोच जनु पापी॥"

ऐसी दशा में:—

"हृदय न बिदरत पंक जिमि बिछुरत पीतम नीर।
जानत हौं मोहि दीन दुख यम-यातना सरीर॥"

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्गोस्वामी

# तुलसीदास कृत रामायणम्

## अयोध्याकाण्ड प्रारम्भः

यस्याङ्के च विभाति[1] भूधर-सुता[2], देवापगा[3] मस्तके,
भाले बालविधुर्गले च गरलं. यस्योरसि व्यालराट्[4] ।
सोऽयं[5] भूतिविभूषणः, सुरवरः, सर्वाधिपः सर्वदा[6],
शर्वः[7], सर्वगतः, शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु-माम्[8] ॥१॥
प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।
मुखांबुजश्रीरघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा ॥२॥
नीलांबुजश्यामलकोमलाङ्गम्, सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायक चारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥३॥

---

अर्थः—जिनकी अंक में पार्वतीजी, सिर पर गंगाजी, मस्तक पर नवीन चन्द्रमा, गले में विष, हृदय पर सर्पराज का यज्ञोपवीत, शोभित है। भस्म रमाए, देवताओं में श्रेष्ठ, सबके स्वामी, अविनाशी, संहार करने वाले सर्वव्यापी, कल्याणकारी तथा चन्द्रमा के समान गौरवर्ण ऐसे श्री महादेव जी मेरी सदैव रक्षा करें ॥१॥

राज्याभिषेक से प्रसन्नता को और बनोवास के दुःख से मलिनता को प्राप्त नहीं हुई, ऐसी श्री रामचन्द्र के मुख-कमल की शोभा, मुझे कल्याण की देने वाली हो ॥२॥ नील कमल के समान सुन्दर श्याम और कोमल अंग वाले, जिनके बाम भाग में जानकी जी विराजमान हैं, हाथों में सुन्दर धनुषबाण है ऐसे रघुवंश के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३॥

१ सुशोभित हैं २ पार्वती ३ ( देव + अप + गा ) गंगाजी ४ सर्पराज ५ ( सः अयम् ) ६ अविनाशी ७ संहारकर्ता ८ मेरी रक्षा करें ।

दोहा—श्रीगुरु चरन-सरोज-रज[१], निज मन मुकुरु सुधारि[२]।
बरनऊँ-रघुबर-बिमल-जसु, जो दायकु फल चारि[३] ॥१॥

जब तें राम ब्याहि घर आये। नित-नव-मंगल मोद बधाये॥
*भुवन-चारिदस भूधर-भारी। सुकृत मेघ[४] बरषहिं सुख-बारी †।
रिधिसिधि-संपति-नदी सुहाई। उमगि अवध-अंबुधि[५] कहँ आई॥
मनिगन-पुर-नर-नारि-सुजाती। सुचि-अमोल-सुन्दर सब भाँती॥
कहि न जाइ कछु नगर बिभूती[६]। जनु एतनिअ बिरंचि-करतूती॥
सब बिधि सब पुर-लोग सुखारी। रामचन्द्र-मुख-चन्दु[७] निहारी॥
मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित[८] बिलोकिमनोरथ-बेली॥
रामरूप गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होंहि देखि सुनि राऊ॥

दोहा—सब के उर अभिलाषु अस, कहहिं मनाइ महेसु।
आपु अछत[९] जुवराज पद, रामहिं देहिं नरेसु ॥२॥

एक समय सब सहित समाजा। राज-सभा रघुराज बिराजा॥
सकल-सुकृत-मूरति नरनाहू। राम-सुजसुसुनि अतिहि उछाहू[१०]॥
नृप सब रहहिं कृपा अभिलाखे। लोकप* रहहिं प्रीति-रुख राखे॥
त्रिभुवन तीनि काल जग माहीं। भूरि-भाग[११] दसरथ सम नाहीं॥
मंगल-मूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिअ थोर सबु तासू॥
राय सुभाय मुकुरु[१२] कर लीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा॥

---

१ चरण रूपी कमल की धूलि २ दर्पण उजला करके ३ अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ४ पुण्य रूपी बादल ५ अवधरूपी समुद्र ६ प्रभुता ७ ( चन्द्रमा रूपी मुँह ) ८ फलती हुई ९ मौजूदगी में, जीते जी १० उत्साह, आनंद ११ बड़-भागी १२ दर्पण।

* पहले ही पद्य में तुलसीदास जी अलंकार-चमत्कार किस खूबी से दिखा रहे हैं, इस पद्य में सम-अभेद रूपक है।

† देखो गूढ़ार्थ प्रकाश।

स्रवन[1] समीप भए सित[2] केसा । मनहुँ जरठ-पनु[3] अस उपदेसा ॥
नृप जुवराजु राम कहुँ देहू । जीवन-जनम-लाहु किन लेहू ॥
दो०—यहि बिचारु उरु आनि नृप, सु-दिन सु-अवसरु पाइ ।
प्रेम-पुलकि तन, मुदित-मन, गुरुहिं सुनायेउ जाइ ॥
कहै भुआलु[4] सुनिअ मुनि-नायक । भये राम सब बिधि सब लायक ॥
सेवक सचिव सकल पुर-बासी । जे हमार अरि मित्र उदासी ॥
सबहिं रामु प्रिय जेहि बिधि मोही । प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही ॥
बिप्र सहित परिवार गोसाईं । करहिं छोहु[5] सब रौरिहि नाईं ॥
जे गुरु चरन-रेनु सिर धरहीं । ते जनु सकल विभवबस करहीं ॥
मोहि सम यहु अनुभयेउ न दूजें । सब पायेउँ प्रभु-पद-रज-पूजें ॥
अब अभिलाषु एक मन मोरें । पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें ॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज-सनेहू[6] । कहेउ नरेस रजायसु[7] देहू ॥
दो०—राजन, राउर नामु-जसु, सब अभिमत दातार ।
फल अनुगामी महिप-मनि[8], मन-अभिलाषु तुम्हार* ॥४॥
सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी । बोलेउ राउ बिहँसि[9] मृदु-बानी ॥
नाथ, रामु करिअहि जुवराजू । कहिअ कृपाकरि करिअ समाजू ॥
मोहि अछत यहु होइ उछाहू । लहहिं लोग सब लोचन-लाहू ॥
प्रभु-प्रसाद सिव सबइ निबाहीं । यह लालसा एक मन माहीं ॥
पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ । जेहि न होइ पाछे पछिताऊ ॥
सुनि मुनि दसरथ-बचन सुहाए । मंगल-मोद-मूल मन भाए ॥
सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं । जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं ॥

---

१ (श्रवण) कान २ सफेद ३ बुढ़ापा ४ भूपाल, राजा ५ कृपा ६ स्वभाव से ही स्नेह है जिनमें, ( बहुव्रीहि ) ७ आज्ञा ८ राजाओं में शिरोमणि, (सप्तमीतत्पुरुष) ९ प्रसन्न होकर ।

* राजन्, आपका नाम और यश सब इच्छाओं को पूरा करने वाला है । हे महिप-मणि, चारों फल आपकी मनोभिलाषाओं के पीछे पीछे चलते हैं—अर्थात् कोई मनोरथ आपका छूछा नहीं पड़ता ।

भयेउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी । रामु पुनीति प्रेम अनुगामी[१] ॥
दो०—बेगि बिलंबु न करिअ नृप, साजिअ सबुइ समाजु ।
सु-दिन सु-मंगल तबहिं जब, राम होहिं जुबराजु ॥५॥
मुदित महीपति मन्दिर आए । सेवक सचिव सुमंत बुलाए ॥
कहि 'जय जीव[२]' सीस तिन्ह नाए । भूप सु-मंगल-बचन सुनाए ॥
प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू 'रामहिं राय देहु जुबराजू' ॥
जौ पाँचहिं मत लागइ नीका । करहु हरषि हिय रामहिं टीका[३] ॥
मंत्री मुदित सुनत प्रिय-बानी । अभिमत बिरव[४] परेउ जनु[५] पानी ॥
बिनती सचिव करहिं कर-जोरी । जिअहु जगत-पति बरस करोरी ॥
जग-मंगल भल काजु बिचारा । बेगिअ नाथ न लाइअ बारा ॥
नृपहिं-मोदु सुनि सचिव सु-भाखा । बढ़त बौंड़[६] जनु लही सु-साखा ॥
दो०—कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आयसु होइ ।
राम राज-अभिषेक-हित, बेग करहु सोइ सोइ ॥६॥
हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी । आनहु सकल सुतीरथ पानी ॥
औषधि मूल फूल फल पाना[७] । कहे नाम गनि मंगल नाना ॥
चामर चरम बसन बहु भाँती । रोम-पाट-पट[८] अगनित-जाती ॥
मनिगन मंगल बस्तु अनेका । जो जग जोगु भूप-अभिषेका ॥
बेद-बिदित कहि सकल बिधाना । कहेउ रचहु पुर बिबिध-बिताना[९] ॥
सफल रसाल[१०] पुंगफल[११] केरा । रोपहु बीथिन्ह[१२] पुर चहुँ फेरा ॥
रचहु मंजु मनि-चौकइँ चारू । कहहु बनावन बेगि बजारू ॥
पूजहु गनपति गुरु कुलदेवा । सब बिधि करहु भूमि-सुर-सेवा ॥

---

१ (प्रेम के अनुगामी)(षष्ठी तत्पु०) २ पुराने समय में राजा के सम्मुख जाते समय प्रजावर्ग यह मंगल-सूचक पद कहते थे । ३ राज-तिलक ४ इच्छा रूपी पौधे पर, ५ मानों (उत्प्रेक्षालंकार वाचक पद) जब मानों, जानो आदि पदों से एक अर्थ में दूसरे अर्थ की संभावना की जाती है । ६ कुम्हड़ा की बेल ७ पत्ते-पान तुलसी आदि के ८ रेशम व ऊनी वस्त्र ९ चँदोवा १० आम ११ सुपारी १२ गलियों में ।

दोहा—ध्वज-पताक-तोरन-कलस, सजहु तुरग-रथ-नाग[1] ।
सिर धरि मुनिबर-बचन सबु निज निज काजहिं लाग ॥७॥

जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा । सो तेहि काजु प्रथम जनु कीन्हा ॥
बिप्र-साधु-सुर पूजत राजा । करत राम-हित मंगल काजा ॥
सुनत राम-अभिषेक-सुहावा । बाज गहागह[2] अवध बधावा ॥
राम सीय-तनु सगुन जनाए । फरकहिं मंगल अंग सुहाए[3] ॥
पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं । भरत आगमनु-सूचक अहहीं[4] ॥
भए बहुत दिन अति अवसेरी[5] । सगुन प्रतीत भेंट प्रिय केरी ॥
भरत-सरिस प्रिय को जगमाहीं । इहइ सगुन-फलु दूसर नाहीं ॥
रामहि बंधु सोच दिन राती । अंडन्हि कमठ-हृदय जेहि भाँती[6] ॥

दोहा—ऐहि अबसर मंगलु परम सुनि हरषेउ रनिवासु ।
सोभत लखिबिधु बढ़त जनु, बारिधि बीचि[7] बिलासु ॥८॥

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए । भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए ॥
प्रेम पुलकि तन-मन अनुरागीं । मंगल कलस सजन सब लागीं ॥
चौकइँ चारु सुमित्रा पूरी । मनिमयबिबिध-भाँति अतिरूरी[8] ॥
आनँद मगन राम महतारी । दिए दान बहु बिप्र हँकारी ॥
पूजी ग्रामदेवि-सुर-नागा । कहेउ बहोरि देन बलि भागा ॥
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू । देहु दया करि सो बरदानू ॥
गावहि मंगल कोकिल-बयनी[9] । बिधु-बदनी मृग-सावक-नयनी ॥

दोहा—राम राज अभिषेकु सुनि, हिय हरषे नर-नारि ।
लगे सु-मंगल सजन सब, बिधि अनुकूल बिचारि ॥९॥

---

१ घोड़ा रथ और हाथी २ ज़ोर से ३ पुरुष का दाहिना और स्त्री का बाँया अंग फड़कना शुभ-सूचक माना गया है । ४ हैं ५ चिन्ता ६ कछुआ तट पर अंडे रख कर जिस प्रकार चिन्तित रहता है । ७ लहर, मानो पूर्ण चन्द्र को देख समुद्र में लहरें बढ़ने लगीं ( उत्प्रेक्षालंकार ) ८ अति सुन्दर ९ कोकिल के बैन समान हैं बैन जिनके आदि ( बहुव्रीहि समास )

तब नर-नाह बसिष्ठु बुलाये। राम-धाम सिख देन पठाये॥
गुरु-आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ नायेउ पद माथा॥
सादर अरघ[1] देइ घर आने। सोरह भाँति[2] पूजि सनमाने॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल-कर जोरी॥
सेवक-सदन स्वामि-आगमनू। मंगल-मूल अमंगल-दमनू॥
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ 'असनीती'॥
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयेउ पुनीत आजु यहु गेहू॥
आइसु होइ सो करउँ गोसांई। सेवक लहइ स्वामि-सेवकाई॥
दोहा—सुनि सनेह-साने-बचन, मुनि रघुबरहि प्रसंस।
राम कस न तुम्ह कहहु अस, 'हंस-बंस-अवतंस'[3] ॥१०॥
बरनि राम-गुन सील-सुभाऊ। बोले प्रेम-पुलकि मुनिराऊ॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहि जुबराजू॥
राम करहु सब संजम[4] आजू। जो बिधि कुसल निबाहइ काजू॥
गुरु सिख देइ राउ पहिं गएऊ। राम-हृदय अस बिसमय भएऊ॥
जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करन-बेध उपवीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा॥
बिमल-बंस यह अनुचित[5] एकू। अनुज बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥
प्रभु सप्रेम-पछितानि सुहाई। हरउ भगत-मन कै कुटिलाई॥
दोहा—तेहि अवसर आये लषन, मगन प्रेम आनन्द।
सनमाने प्रिय-बचन कहि, रघुकुल-कैरव-चन्द[6] ॥११॥

---

१ आगन्तुक के स्वागत के लिये पात्र से पृथ्वी पर जल छोड़ना, आर्षकाल की स्वागत विधि। २ देखो गूढ़ार्थ कोष। ३ हंस (सूर्य) के वंश षष्ठी-तत्पु० हंस वंश में अवतंस (भूषण) सप्तमी तत्पु०। ४ व्रत, नियम। ५ यद्यपि नीति उचित समझती है परन्तु राम का स्वार्थत्यागी हृदय इसे अनुचित समझता है। ६ रघुकुल रूपी कैरव, (रूप्य-रूपक भाव में रूपक कर्मधारय) रघुकुल रूपी कैरव के लिये चन्द्रमारूप—परं-परित रूपक।

बाजहिं बाजन बिबिध-बिधाना । पुर-प्रमोदु नहिं जाय बखाना ॥
भरत आगमनु[1] सकल मनावहिं । आवहिं बेगि नयन फल पावहिं ॥
हाट बाट घर गली अथाई[2] । कहहिं परसपर लोग-लोगाई ॥
कालि लगन[3] भल केतिक बारा । पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा ॥
कनक सिंघासन सीय समेता । बैठहिं राम होय चित-चेता[4] ॥
सकल कहहिं कब होइहि काली । बिघन मनावहिं देव कुचाली ॥
तिन्हहिं सोहाइ न अवध-बधावा । चोरहिं चाँदनि राति न भावा ॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं । बारहिं बार पाँय लै परहीं ॥
दोहा—बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु ।
रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुर-काजु ॥
सुनि सुर-बिनय ठाढ़ि पछिताती । भइउँ सरोज-बिपिन-हिमराती ॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी । मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी[5] ॥
बिसमय-हरष-रहित[6] रघुराऊ । तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ ॥
जीव करम-बस दुख-सुख-भागी । जाइअ अवध देवहित लागी ॥
बार बार गहि चरन सकोची । चली बिचारि बिबुध[7] मति-पोची[8] ॥
ऊँच निवास नीच करतूती । देखि न सकहिं पराइ बिभूती ॥
आगिल काजु बिचारि बहोरी । करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी ॥
हरषि हृदय दसरथ-पुर आई । जनु ग्रह-दसा[9] दुसह दुख-दाई ॥
दोहा—नामु मंथरा मंद-मति, चेरि कैकेई केरि ।
अजस-पेटारी[10] ताहि करि गई गिरा[11] मति फेरि ॥१२॥
दीख मंथरा नगरु बनावा । मंगल मंजुल बाज बधावा ॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू । 'राम-तिलकु' सुनि भा उर दाहू ॥

---

१ आना (भाव वा० संज्ञा) २ (आस्थाई) चौपाल, बैठक। ३ मुहूर्त्त ४ मनचाहा ५ खोट, अपराध ६ सुख दुःख से रहित। (अपादान कारक में) ७ देवता ८ खोटी बुद्धि ९ जन्म राशि से ४, ८, १२ स्थान पर शनिश्चर, राहु, मंगल आदि क्रूर ग्रह हों तो कुदशा होती है। १० बुराई का पात्र ११ सरस्वती।

करइ बिचारु कुबुद्धि-कुजाती। होइ अकाजु कवनि बिधि राती॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गँव-तकइ[1] लेउँ केहि भाँती॥
भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। 'का अनमनिहसि' कह हँसि रानी॥
ऊतरु देइ न लेइ उसासू। नारि-चरित करि ढारइ आँसू॥
हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें। 'दीन्ह लखन सिख' अस मन मोरें॥
तबहुँ न बोलि चेरि बड़ि पापिनि। छाँड़इ स्वास कारि जनि साँपिनि॥
दोहा—सभयरानि कह 'कहसि किन'[2] कुसल रामु महिपाल।
लखनु-भरतु रिपु-दमनु?, सुनि भा† कुबरी-उर सालु[3]॥१४॥
कत सिख देइ हमहिं कोउ माई। गालु करब केहि कर बलु पाई॥
रामहि छाँड़ि कुसल केहि आजू। जेहि जनेसु देइ जुबराजू॥
भयउ कौसलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मनु छोभा[4]॥
पूतु बिदेस, न सोचु तुम्हारें। जानतिहहु 'बस नाहु हमारें'॥
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई[5]। लखहु न भूप कपट-चतुराई॥
सुनि प्रिय-बचन मलिन-मनु जानी। झुकी[6] रानि अब रहु अरगानी[7]॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घर फोरी[8]। तब धरि[9] जीह कढ़ावौं तोरी॥
दोहा—'काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि॥१५॥
प्रिय-बादिनि[10] सिख दीन्हिउँ तोही। सपनेहु तो पर कोपु न मोही॥
सु-दिन सु-मंगल-दायकु सोई। तोर कहा फुर[11] जेहि दिन होई॥
जेठ स्वामि, सेवक लघु भाई। एहु दिन कर कुल रीति सोहाई॥

---

१ घात लगाती है २ क्यों नहीं कहती है ३ कुबड़ी का दिल दुख गया ४ दुखी हुआ ५ तोशक, तकिया ६ नाराज़ हुई ७ चुप ८ घर में फूट डालने की बात ९ पकड़ कर १० मिठ-बोली (बहुव्रीहि समास) ११ सत्य।

†दुंदभी नामक गन्धर्वी शापवश कुबड़ी स्त्री होकर कैकेयी की दासी बनी। यह तीन जगह से टेढ़ी थी इसका नाम त्रिवक्रा भी था।

राम-तिलकु जौं साँचेहु काली। देउँ माँगु मन भावत आली ॥
कौसिल्या सम सब महतारी। रामहि सहजसुभाय[1] पियारी ॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी। मैं करि प्रीति परीच्छा देखी ॥
जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहु राम-सिय पूत-पतोहू[2] ॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्ह के तिलक छोभु कस तोरें ॥

दो०—भरत सपथ तोहि, सत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिषमउ करसि, कारन मोहि सुनाउ ॥१६॥

एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीह करि दूजी ॥
फोरइ जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रौरेहि लागा ॥
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि, करुइ मैं माई ॥
हमहुँ कहब अब ठकुर-सोहाती। नाहिं त मौन रहब दिन राती ॥
करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। 'बवा सो लुनिअ'[3] लहिअ जो दीन्हा ॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी ॥
जारइ जोग सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥
ताते कछुक बात अनुसारी[4]। छमिअ देबि बड़ि चूक हमारी ॥

दो०—गूढ़-कपट-प्रिय बचन सुनि, तीय अधर-बुधि रानि।
सुर-माया-बस बैरिनिहि, सुहृद जानि पतियानि[5] ॥१७॥

सादर पुनि पुनि पूछति ओही। सबरी-गान[6] मृगी जनु मोही ॥
तसि मति फिरी अहइ जसि भावी[7]। रहसी[8] चेरि घात[9] जनु फाबी[10] ॥
तुम्ह पूछहु मैं कहत डेराऊँ। धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ ॥
सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली। अवध साढ़-साती[11] तब बोली ॥

---

१ स्वभाव से ही २ बहू बेटा ३ जो बोया गया वही काटा गया अर्थात् करनी का फल पाया। ४ कही ५ विश्वास किया ६ भीलनी के गाने से ७ होनहार ८ प्रसन्न हुई ९ दाव १० (फबती) लगी। ११ शनिश्चर एक राशि पर २½ वर्ष रहता है, जन्म का, बारहवाँ और दूसरा जन्म राशि से बुरा समझा जाता है, तीनों की मिलकर साढ़े सात वर्ष वाली दशा। (बहुव्रीहि समास)

'प्रिय सियरामु' कहा तुम रानी । रामहिं तुम प्रिय' सो फुरिबानी ॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते । समउ फिरे रिपु[१] होहिं पिरीते ॥
भानु[२] कमल-कुल पोषनिहारा[३] । बिनु जर जारि करै सोइ छारा[४] ॥
जर[५] तुम्हारि चह सवति उखारी । रूँधहु[६] करि उपाउ बर-बारी[७] ॥

दो०—तुम्हहिं न सोचु, सुहाग[८] बल, निज बसजानहु राउ ।
मन-मलीन मुँह-मीठ नृप, राउर सरल-सुभाउ ॥१८॥

चतुर गँभीर[९] राम-महतारी । बीचु[१०] पाइ निज बात सँभारी ॥
पठए भरतु भूप ननिऔरें । राम-मातु-मत जानब रौरें[११] ॥
सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें । गरबित भरत-मातु बल पी कें ॥
सालु तुम्हार कौसलहि माई । कपट-चतुर[१२] नहिं होइ जनाई ॥
राजहिं तुम पर प्रेम बिसेखी । सवति[१३] सुभाउ सकइ नहिं देखी
रचि प्रपंच[१४] भूपहि अपनाई । राम-तिलक हित लगन धराई ॥
यह कुल उचित राम कहँ टीका । सबहि सुहाइ मोहि सुठि नीका ॥
आगिलि बात समुझि डर मोही । देउ दैव फिरि सो फलु ओही ॥

दो०—रचिपचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु ।
कहेसि कथा सत-सवित कै, जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु[१५] ॥१९॥

भावी बस प्रतीति उर आई । पूँछि रानि निज सपथ दिवाई ॥
का पूछहु तुम्ह अबहु न जाना । निज हित-अनहित पसु पहिचाना ॥
भयेउ पाख[१६] दिनु सजत समाजू । तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू ॥
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें । सत्य कहें नहि दोषु हमारें ॥
जौं असत्य कछु कहब बनाई । तौ बिधि देइहि हमहि सजाई[१७] ॥

---

१ वैरी २ सूर्य ३ पालन करने वाला ४ खाक ५ (जड़) ६ रक्षा करो ७ उपायरूपी सुन्दर बारि से ( चारों ओर काँटे आदि लगा कर ) ८ सौभाग्य ९ गहरी, मनके भावों को गूढ़ रखने वाली १० अवसर ११ आप १२ कपट में चतुर, छलिया १३ (सपत्नी) सौत १४ षड्यंत्र, जाल १५ बैर १६ (पक्ष) १७ सजा ।

रामहि तिलकु कालि जौं भयेऊ । तुम्ह कहँ बिपति-बीजु[१] बिधि बयेऊ
रेख खँचाइ कहउँ बलुभाखी[२] । भामिनि भइहु दूध कइ माखी ॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई ॥
दो०—*कद्रू बिनतहि दीन्ह दुखु, तुम्हहिं कौसिला देव ।
भरत बंदि-गृह सेइहहिं, लखनु राम के नेव[३] ॥२०॥
केकय-सुता सुनत कटु-बानी । कहि न सकै कछु सहमि[४] सुखानी॥
तनुपसेउ[५] कदली[६] जिमि काँपी । कुबरी दसन जीभ तब चाँपी[७] ॥
कहि कहि कोटिक कपट-कहानी । धीरज धरहु प्रबोधिसि रानी ॥
कीन्हिस कठिन पढ़ाइ कुपाठू[८] । जिमि न नवै फिर उकठि[९] कु-काठू[१०]
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली । बकिहि[११] सराहइ मानि मराली[१२]
सुनु मंथरा बात फुरि तोरी । दहिनि आँखि नित फरकहि मोरी ॥
दिन प्रति देखौं राति कु-सपने । कहौं न तोहि मोह बस अपने ॥
काह करउँ सखि सूध सुभाऊ । दाहिन-बाम[१३] न जानउँ काऊ ॥
दो०—अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहुक कीन्ह ।
केहि अघ एकहि बार मोहि, दैव दुसह-दुख दीन्ह ॥२१॥
नैहर[१४] जनमु भरब[१५] बरु जाई । जियत न करबि सवति सेवकाई ॥
अरिबस दैउ जिआवत जाही । मरनु नीक तेहि जीव न चाही ॥

---

* कद्रू और विनता नामक कश्यप मुनि की दो स्त्रियाँ थीं । सर्पों की माता का नाम कद्रू और पक्षियों की माता का नाम बिनता था । एक दिन कद्रू ने विनता से सूर्य के घोड़े की पूँछ का रंग पूँछा—कैसा है ? उसने कहा गोरा है । कद्रू ने कहा काला है । इस झगड़े में निश्चय हुआ कि चलकर देखो और जिसकी बात झूँठी हो वह दासी बन कर रहे । कद्रू को जिताने के लिये घोड़ों की पूछ में सर्प जा लिपटे । पूँछ काली दिखाई देने लगी । जिससे विनता लज्जित हो उसकी दासी होकर रहने लगी ।

१ दुःख का बीज २ प्रतिज्ञा पूर्वक ३ ( नायब ) सहायक ४ डरी ५ पसीना आया ६ केले का पेड़ ७ दाबी ८ बुरे पाठ ९ उकठा हुआ, सूखा १० बबूल ११ बगुली १२ हंसनी १३ मित्र, अमित्र १४ पीहर १५ बिताऊँगी ।

दीन-बचन कह बहु-बिधि रानी । सुनि कुबरी तिय-माया ठानी ॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना[1] । सुख सोहागु तुम्ह कहँ दिनदूना ॥
जेहि राउर अति अनभल ताका । सो पाइहि एहु फलु परिपाका[2] ॥
जबतें कुमत सुना मैं स्वामिनि । भूख न बासर नींद न जामिनि[3] ॥
पूछेऊँ गुनिन्ह[4] रेख तिन्ह खाँची । भरत भुआल होहि एहु साँची ॥
भामिनि करहु त कहउँ उपाऊ । हैं तुम्हरी सेवा बस राऊ ॥
दो०—परौं कूप तुअ बचन लगि, सकौं पूत[5] पति त्यागि ।
कहसि मोर दुखु देखि बड़, कस न करब हित लागि ॥२२॥
कुबरी करि कुबली कैकेई । कपट-छुरी उर-पाहन टेई ॥
लखइ न रानि निकट दुख कैसे । चरइ हरित-तृन बलि पसु जैसे[6] ॥
सुनत बात मृदु अन्त कठोरी । देति मनहुँ मधु माहुर घोरी ॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं । स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं ॥
दुइ बरदान † भूप सन थाती[7] । माँगहु आजु जुड़ावहु छाती ॥
सुतहिं राजु रामहिं बनवासू । देहु, लेहु, सब सवति हुलासू ‡ ॥

† इंद्र की सहायता के लिये राजा दशरथ एकबार कैकेयी को साथ के दैत्यों से युद्ध करने गये । युद्ध में रथ की धुरी टूट गई । कैकेयी ने अपने हाथ के सहारे से रथ को ज्यों का त्यों खड़ा रक्खा । जब राजा विजय पाकर रथ से उतरे और यह हाल देखा तब प्रसन्न होकर रानी से कहने लगे कि तेरी मदद से जीत हुई है, तू बर माँग । कैकेयी ने कहा मेरा यह बर आप पर उधार रहा, जब चाहूँगी माँग लूँगी ।

एक बार राजा दशरथ के विस्फोटक रोग हुआ । वह कैकेयी के प्रयत्न से अच्छा होगया था । इस पर राजा ने प्रसन्न होकर बरदान देने को कहा । कैकेयी ने उस बरदान को भी थाती रूप रख दिया । इस प्रकार दो बरदान हुए ।

१ हिरास होकर २ परिपाक, फल ३ ( यामिनि ) रात्रि ४ ज्योतिषियों को ५ पुत्र ※ रूपक कर्मधारय समास, रूपकालंकार ६ बलि होने वाले पशु को हरी हरी घास आदि पदार्थ दिये जाते हैं; वह खुश होकर खाता है, मगर आगे के दुःख का उसे जरा भी ज्ञान नहीं ७ धरोहर
‡ परिवृत अलंकार-जहाँ एक वस्तु को देकर दूसरी ली जाय ।

भूपति राम-सपथ जब करई। तब माँगेहु जेहि बचनु न टरई ॥
होइ अकाजु आजु निसि बीतें। बचनु मोर प्रिय मानहु जीतें ॥
दो०—बड़ कुघातु करि पातिकिनि, कहेसि कोप-गृह जाहु।
काज सवाँरेहु सजग[1] सबु सहसा[2] जनि पतिआहु ॥२३॥

कुबरिहि रानि प्रान-प्रिय जानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी ॥
तोहि सम हितु न मोर संसारा। बहे जात कइ भइसि अधारा[3] ॥
जौं बिधि पुरब मनोरथु काली। करौं तोहि चख-पूतरि[4] आली ॥
बहु बिधि चेरिहि आदरु देई। कोप-भवन गवनी कैकेई ॥
*बिपति बीजु बरषारितु चेरी। भुँइ भइ कुमति[5] कैकेई केरी ॥
पाइ कपट-जलु अंकुर जामा[6]। बर[7] दोउ दल[8] दुख फल परिनामा ॥
कोप-समाजु साजि सबु सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई[9] ॥
राउर नगर कोलाहलु होई। यह कुचाल कछु जान न कोई ॥
दो०—प्रमुदित पुर-नर-नारि सब सजहिं सु-मंगलचार।
एक प्रविसहिं एक निरगमहिं[10] भीर भूप-दरबार ॥२४॥

बाल-सखा सुनि हिय हरषाहीं। मिलि दस पाँच राम पहिं जाहीं ॥
प्रभु आदरहिं प्रेम पहिचानी। पूँछहिं कुसल-छेम मृदु-बानी ॥
फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परसपर राम बड़ाई ॥
को रघुबीर-सरिस[11] संसारा। सीलु-सनेहु निबाहनि-हारा ॥
जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं ॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात एहु ओर निबाहू ॥
अस अभिलाषु नगर सब काहू। कैकय-सुता हृदय अतिदाहू ॥
को न कु-संगति पाइ नसाई। रहै न नीच मते चतुराई ॥

---

१ चैतन्य २ शीघ्र ३ सहारा ४ आँख की पुतली *सम-अभेद-रूपक-अलंकार ५ 'मति ही कुत्सित' कर्मधारय, बहुव्रीहि में 'कुत्सित है मति जिसकी' ऐसा विग्रह होगा ६ जमा, निकला ७ बरदान ८ पत्ते ९ नष्ट की १० जाते हैं ११ सदृश ।

दो०—साँझ समय सानंद नृप, गएउ कैकेई गेह ।
गवन निठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेह ※ ॥२५॥

कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ । भयबस अगहुड़[१] परइ न पाऊ ॥
सुर-पति बसइ बाँह-बल जाके । नर-पति सकल रहहिं रुख ताके ॥
सो सुनि तिय-रिस गयेउ सुखाई । देखहु काम प्रताप बड़ाई ॥
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे[२] । ते रति-नाथ[३] सुमन-सर[४] मारे ॥
सभय[५] नरेसु प्रिया पहिं गयऊ । देखि दसा दुख दारुन भयेऊ ॥
भूमि-सयन पटु मोट पुराना । दिए डारि तन भूषन नाना ॥
कुमतिहि कसि कुवेषता फाबी । अन-अहिबातु सूच जनु भावी† ॥
जाइ निकट नृपु कह मृदु-बानी । प्रान-प्रिया केहि हेतु रिसानी ॥

छं०—केहि हेतु रानि रिसानि, परसत पानि पतिहि निवारई[६] ।
‡मानहुँ सरोष-भुअंग-भामिन[७] विषम भाँति निहारई ॥
दोउ बासना[८] रसना[९] दसन बर[१०] मरम ठाहरु[११] देखई ।
तुलसी नृपति भवितव्यताबस काम-कौतुक लेखई ॥

सो०—बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिक-बचनि ।
कारन मोहि सुनाउ, गज-गामिनि निज कोप कर ॥२६॥

अनहित[१२] तोर प्रिया केइ कीन्हा । केहि दुइ-सिर केहि जम चह लीन्हा ॥
कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू । कहु केहि नृपहि निकारउँ देसू ॥
सकउँ तोर अरि अमरउ मारी । काह कीट बपुरे नर-नारी ॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू[१३] । मन तव आनन चंद चकोरू ॥

---

※मानो स्नेह शरीर धारण कर कठोरता के पास गया है ( उत्प्रेक्षालंकार ) १ आगे २ सहनेवाले ३ कामदेव ४ फूलों के बाण ५ डरते हुए † मानों भावी रड़ापे की सूचना है ६ हाथ छूने से रोकती है ७ साँपिनि ८ इच्छा ९ जीभ १० बरदान ११ मर्मस्थान १२ बुरा १३ सुन्दर जंघा वाली ‡कवि ने यहाँ कैकेयी को भुजंगिन, क्रोध पूर्ण दृष्टि को सर्पिणी की भयानक दृष्टि, वासनाओं को जीभ, बरदानों को दाँत माना है अतः उत्प्रेक्षा में रूपालंकार है ।

प्रिया, प्रान सुत सरबसु मोरें । परिजन[१] प्रजा सकल बस तोरें ॥
जौं कछु कहहुँ कपटि करि तोहीं। भामिनि राम-सपथ-सत मोहीं ॥
बिहँसि माँगु मन-भावति बाता । भूषन सजहि मनोहर गाता ॥
घरी कुघरी[२] समुझि जिय देखू। बेगि प्रिया परिहरहि कुबेखू ॥

दो०—यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि, बिहँसि उठी मति मंद[३] ।
　　भूषन सजति बिलोकि मृगु, मनहुँ किरातिनि फंद ॥२७॥

पुनि कह राउ सुहृद जिअ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी ॥
भामिनि भयेउ तोर मनभावा। घरघर नगर अनंद-बधावा ॥
रामहिं देउँ कालि जुवराजू । सजहि सु-लोचनि मंगल-साजू ॥
दलकि[४] उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयेउ पाक बरतोरू[५]॥
ऐसिउ पीर बिहँसि तेइ गोई[६] । चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई ॥
लखो न भूप कपट-चतुराई । कोटि कुटिल मनि[७] गुरू पढ़ाई॥
जद्यपि नीति-निपुन[८] नरनाहू । नारि-चरित जलनिधि अवगाहू[९] ॥
कपट-सनेहु बढ़ाइ बहोरी । बोली बिहँसि नयन मुँहुँ मोरी ॥

दो०—माँगु माँगु पै कहहु पिय, कबहुँ न देहु न लेहु ॥
　　देन कहेहु बरदान दुइ, तेउ पावत संदेहु ॥२८॥

जानेउँ मरमु राउ हँसि कहई । तुम्हहिं कोहाब[१०] परमप्रिय अहई ॥
थाती राखि न माँगेहु काऊ । बिसरि गयेऊ[११] मोहि भोर सुभाऊ ॥
झूठेहु हमहिं दोष जनि देहू । दुइ कै चारि माँगि मकु लेहू ॥
रघुकुल-रीति सदा चलि आई । प्रान जाहु वरु, बचनु न जाई ॥
नहिं असत्य-सम पातक पुंजा[१२]। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा॥
सत्य मूल सब सुकृत सोहाए । बेद पुरान बिदित मनु गाए ॥

---

१ कुटुम्ब २ समय, कुसमय ३ खोटी बुद्धिवाली ४ चौंकपड़ी ५ बालतोड़ ६ छिपाली ७ करोड़ों खोटे लोगों के सरदारों के गुरु । ८ नीति में निपुण (सप्तमी तत्पु०) ९ अथाह समुद्र १० रूठना ११ याद नहीं रहा १२ पाप का समूह ।

तेहि पर राम-सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि[1] रघुराई॥
बात दृढ़ाइ कुमति[2] हँसि बोली। कुमत कुबिहंग कुलह[3] जनु खोली॥

दो०—भूप मनोरथ सुभग बनु, सुख सु-बिहंग समाजु।
भिल्लिन जनु छाँड़न चहति बचन भयंकर बाजु॥२९॥

सुनहु प्रानपति भावत जीका। देहु एक बर भरतहि टीका॥
मागउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥
तापस-बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरस रामु बनबासी॥
सुनि मृदु बचन भूप हिय सोकू। ससि-कर[5] छुअत बिकल जिमि कोकू[6]॥
गयेउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान[7] बन झपटेउ लावा[8]॥
बिबरन[9] भयेउ निपट नरपालू। दामिनि हनेहु मनहुँ तरुतालू॥
माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन॥
मोर मनोरथ सुरतरु-फूला[10]। फरत करिनि[11] जिमि हतेउ समूला॥
अवध उजारि कीन्हि केकेई। दीन्हिसि अचल बिपति कै नेई[12]॥

दो०—कवने अवसर का भयेउ, गएउँ नारि बिस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि, जतिहि[13] अविद्यां नास॥३०॥

एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँखा[14]। देखि कुभाँति कुमति मनु माँखा[15]॥
भरतु कि राउर पूत न होही। आनेहु मोल बेसाहि[16] कि मोही॥
जो सुनि सरु अस लागु तुम्हारे। काहे न बोलेहु बचनु सँभारे॥
देहु उतरु असु करहु कि नाहीं। सत्य-संध[17] तुम्ह रघुकुल माहीं‡॥
देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजसु लेहू॥
सत्य सराहि कहेहु बरु देना। जानेहु लेइहि माँगि चबेना॥

---

१ सीमा २ ( बहुब्रीहि में ) कैकेयी ३ टोपी ४ सुखरूपी सुन्दर पक्षियों का समूह ५ चंद्रकिरण ६ चकवा-चकवी ७ बाज ८ बटेर ९ मलीन १० कल्पवृक्ष के फूल ११ हथिनी १२ नींव १३ योगी १४ झींके १५ क्रोध १६ खरीदा १७ सत्य-प्रतिज्ञा ❀ रूपकालंकर ‡ ( व्यंग, पछताये )।

*सिवि † दधीचि ‡ बलि जो कछु भाषा । तनु धनु तजेहु बचन पनु राखा
अति-कटु-बचन कहति कैकेई । मानहुँ लोन जरे पर देई[1] ॥
दो०—धरम-धुरंधर[2] धीर धरि नयन उधारे राय ।
सिर धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठाय[3] ॥ ३१ ॥

१ जले पर लौन लगाना-दुःख में दुःख बढ़ाना (लोकोक्ति) २ धरम धुर (धरम की धुरी) प० तत्पु० धरम-धुरंधर, धरम की धुरी धारण की है जिसने ( बहुब्रीहि ) ३ कुठौर ।

*१—राजा उशीनर का जेठा पुत्र शिवि बड़ा दानी था उसकी राजधानी कन्धार के पास थी । एक दिन ब्रह्मा उसके दान की परीक्षा करने को ब्राह्मण बनकर आये । राजा से उसके पुत्र का माँस उसी के हाथ से पका हुआ माँगा । राजा ने ऐसा ही किया । अन्त में राजा ही से खाने को कहा । राजा इस पर भी तुल गया । तब ब्रह्मा अपने असली रूप में होगये और राजा की दान शीलता से बड़े प्रसन्न हुए ।

२—राजा शिवि को ९२ यज्ञों में सफल हुआ देखकर इन्द्र व्याकुल हुआ । उसकी यज्ञ विध्वंस करने को स्वयं बाज बनकर अग्नि को कबूतर बनाया और उसके पीछे दौड़ा । कबूतर ने यज्ञ की वेदी पर बैठे हुए राजा की शरणली । राजा शरणागत को बचाने के लिये अपने शरीर का माँस काट कर कबूतर के बराबर तोलने लगा । जब पूरा नहीं हुआ तो अपनी गर्दन काटने को तैयार हुआ । तब भगवान ने प्रगट होकर उसे अपने धाम भेज दिया ।

†दधीच ऋषि ने वृत्रासुर को मारने के लिये अपनी जाँघ की हड्डी इन्द्र को दे दी, जिससे उन्हें प्राण त्याग करना पड़ा ।

‡जब राजा बलि त्रिलोकी का स्वामी हुआ तब इंद्र घबरा कर विष्णु के पास गयें, उन्होंने धीरज दे राज्य दिलाने का वायदा किया और बामन रूप धर बलि से जाकर ३½ पेंड़ धरती माँगी । राजा ने इनको दान दिया, तब ३ चरण में ब्रह्मलोक तक नाप कर आधे चरण में पृथ्वी माँगी, राजा ने कहा "मेरी पीठ नाप लीजिये" । भगवान् उससे प्रसन्न हुए और इंद्र की कामना पूरी की ।

आगे दीख जरति रिस भारी । मनहु रोष तरवारि उघारी ॥
मूठि[१] कुबुद्धि धार निठुराई[२] । धार कूबरी सान बनाई[३] ॥
लखी महीप कराल[४] कठोरा । सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा ॥
बोले राउ कठिन करि छाती । बानी सबिनय तासु सोहाती[५] ॥
प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती । भीरु प्रतीति[६] प्रीति करि हाँती[७] ॥
मोरें भरतु रामु दुइ आँखी । सत्य कहहुँ करि संकर साखी[८] ॥
अबसि दूत मैं पठउब प्राता । ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता ॥
सुदिन सोधि सबु साजु सजाई । देउँ भरत कहँ राजु बजाई[९] ॥

दो०—लोभु न रामहि राजु कर, बहुत भरत पर प्रीति ।
मैं बड़ छोट बिचारि जिय, करत रहेउँ नृपनीति[१०] ॥३२॥

राम-सपथ-सत कहहुँ सुभाऊ । राममातु कछु कहेउ न काहू ॥
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूँछें । तेहि तें परेउ मनोरथ छूछें[११] ॥
रिस परिहरु अब मंगल साजू । कछु दिन गये भरत जुबराजू ॥
एकहि बात मोहि दुख लागा । बर दूसर असमंजस[१२] माँगा ॥
अजहूँ हृदय जरत तेहि आँचा । रिस परिहास कि साँचेहु साँचा ॥
कहु तजि रोष राम-अपराधू । सबु कोउ कहै रामु सुठि[१३] साधू ॥
तुहूँ सराहसि करसि सनेहू । अब सुनि मोहि भयेउ संदेहू ॥
जासु सुभाउ अरिहि-अनुकूला । सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला ॥

दो०—प्रिया हास[१४] रिस परिहरहि, माँगु बिचारि बिबेकु ।
जेहि देखौं अब नयन भरि, भरत राज अभिषेकु ॥३३॥

जिअइ मीन बरु बारि बिहीना । मनि बिनु फनिकु जिअइ दुखदीना ॥

---

१ (मुष्टिक) दस्ता २ कठोरता ३ पैनी की ४ भयंकर ५ अच्छी लगने वाली ६ विश्वास, ७ नष्ट करके ८ साक्षी, गवाही ९ धूम धाम के साथ १० राजनीति ११ खाली १२ चिन्ता से भरा हुआ १३ श्रेष्ठ

कहौं सुभाउ न छलु मन माहीं। जीवन मोर राम बिन नाहीं॥
समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना। जीवन राम-दरस-आधीना॥
सुनिमृदुबचन कुमति असि जरई। मनहुँ अनल[१] आहुति[२] घृत परई॥
कहै करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहिं राउरि-माया॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं। मोहि न बहुत प्रपंच[३] सोहाहीं॥
रामु साधु तुम्ह साधु सयाने। राम मातु भलि सब पहिचाने*॥
जस कौसिला मोर भल ताका[४]। तस फलु उन्हहिं देउँ करि साका[५]॥

दो०--होत प्रातु मुनिवेष धरि, जौं न राम बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजसु, नृप समुझिअ मन माहिं॥३४॥

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मनहु रोष-तरंगिनि[६] बाढ़ी†॥
पाप-पहार प्रगट भै सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई[७]॥
दोउ बर कूल[८] कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी-बचन-प्रचारा॥
ढाहति[९] भूपरूप तरुमूला। चली बिपति-बारिधि अनुकूला॥
लखी नरेस बात सब साँची। तियमिसु मीचु[१०] सीस पर नाची॥
गहि पद बिनय कीन्हि बैठारी। जनि-दिनकर-कुल होसिकुठारी[११]॥
माँगु माथ अबहीं देउँ तोही। रामबिरह जनि मारसि मोही॥
राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँती। नाहिंत जरिहि[१२] जनमभरिछाती॥

दो०--देखी ब्याधि असाधि[१३] नृपु, परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ॥३५॥

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करनि[१४] कलप-तरु मनहुँनिपाता[१५]

---

१ अग्नि २ होम की वस्तु जो मंत्र के साथ अग्नि में छोड़ी जाती है ३ माया*वक्रोक्ति अलंकारः—( जहाँ निंदा में स्तुति और स्तुति में निंदा हो ) ४ सोचा है ५ वीरता-पूर्वक। ६ क्रोध की नदी ७ देखने से भय होता है ८ किनारा ९ गिराती है १० मृत्यु ११ कुल्हाड़ी १२ दुःख देती रहैगी १३ (असाध्य) रोग १४ हथिनी १५ नष्ट किया।

†यहाँ कैकेयी का रोष नदी (की तीव्र धारा) है जो पाप रूप पर्वत

कंठ सूख मुख आव न बानी । जनु पाठीन[१] दीनु बिनु पानी ॥
पुनि कह कटु कठोर कैकेई । मनहु घाय महुँ माहुर[२] देई ॥
जौं अन्तहु अस करतबु रहेऊ । माँगुमाँगु तुम्ह केहिबल कहेऊ ॥
दुइ कि होइ एक समय भुआला । हँसब ठठाइ फुलाइब गाला ॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई । होइ कि छेम-कुसल रौताई[३] ॥
छाँड़हु बचन कि धीरज धरहू । जनि अबला जिमि करुना करहू[४] ॥
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी । सत्य-संध[५] कहँ तृनसम बरनी ॥

दो०—मरमबचन[६] सुनि राउ कह कहु कछु दोष न तोर ।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोर ॥३६॥

चहत न भरत भूपपद भोरें । बिधिबस कुमति बसी जियतोरें ॥
सो सबु मोर पाप परिनामू । भयेउ कुठाहर[७] जेहि बिधि बामू ॥
सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई । सब गुनधाम राम प्रभुताई ॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई । होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई ॥
तोर कलंकु मोर पछिताऊ । मुयेहु न मिटिहि न जाइहि काऊ ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई । लोचन-ओट बैठु मुँहु गोई ॥
जबलगि जिअउँ कहउँ कर जोरी । तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी ॥
फिर पछितैहसि अंत अभागी । मारसि गाइ नाहरू[८] लागी ॥

दो०—परेउ राउ कहि कोटि विधि, काहे करसि निदानु[९] ।
कपटसयानि न कहति कछु, जागत मनहुँ मसानु[१०] ॥३७॥

राम राम रट बिकल भुआलू । जनु बिनु पंख विहंग[११] बेहालू[१२] ॥

---

से निकली है, क्रोधरूप जल से भरी हुई है, वह दोनों किनारे हैं, हठ धारा है. कुबड़ी की शिक्षा भँवर है. राजा का जो रूप है वही किनारे का वृक्ष है जो धारा से बाढ़ आने पर गिरता है और जो विपत्ति रूप समुद की ओर बह रही है। (रूपकालंकार )

१ एक प्रकार की मछली २ विष ३ शूरता ४ रोना न चाहिये ५ सत्य प्रतिज्ञा वाले ६ हृदय को बेधने वाले ७ कु-समय ८ नाहर या ताँत ९ अन्त, सर्वनाश १० तांत्रिक प्रयोग है—मसान जगाते समय मौन धारण किया जाता है ११ पक्षी १२ व्याकुल ।

हृदय मनाव भोरु जनि होई। रामहि जाइ कहै जनि कोई॥
उदय करहु जनि रबि रघुकुलगुर। अवध बिलोकि सूल होइहि उर॥
भूपप्रीति कैकेइ कठिनाई। उभय अवधि[1] बिधि रची बनाई॥
बिलपत नृपहि भयेउ भिनुसारा[2]। बीना-बेनु संख-धुनि द्वारा॥
पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक[3]। सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक[4]॥
मंगल सकल सुहाहिं न कैसें। सहगामिनिहि[5] बिभूषन जैसें॥
तेहि निस नींद परी नहिं काहू। राम-दरस-लालसा उछाहू॥

दो०—द्वार भीर सेवक सचिव, कहहिं उदित रबि देख।
जागे अजहुँ न अवधपति, कारनु कवनु बिसेखि॥३८॥

पछिले पहर भूपु नित जागा। आजु हमहि बड़ अचरजु लागा।
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। कीजिअ काज रजायसु[6] पाई॥
गए सुमंत्रु तब राउर माहीं। देखि भयावन जात डेराहीं॥
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहुँ बिपद बिषाद बसेरा[7]॥
पूँछे कोउ न ऊतरु देई। गए जेहि भवन भूप कैकेई॥
कहि जयजीव बैठ सिर नाई। देखि भूपगति गयेउ सुखाई॥
सोच बिकल बिबरन[8] महि परेऊ। मानहुँ कमल मूल परिहरेऊ[9]॥
सचिव सभीत सकै नहिं पूँछी। बोली असुभ भरी सुभ-छूँछी[10]॥

दो० - परी न राजहिं नींद निसि, हेतु जान जगदीसु।
रामु रामु रटि भोरु किय, कहै न मरमु[11] महीसु॥३९॥

आनहु रामहिं बेगि बोलाई। समाचार तब पूँछेहु आई॥
चलेउ सुमंत्रु रायरुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी॥
सोच बिकल मग परै न पाऊ। रामहिं बोलि कहहिं का राऊ॥
उर धरि धीरजु गयेउ दुआरें। पूँछहिं सकल देखि मनु-मारें॥

---

१ सीमा २ सवेरा ३ गाने वाले ४ तीर ५ सती को (सती स्त्री को पति के साथ जलने से पहले वस्त्राभूषण पहिनने पड़ते थे) ६ आज्ञा ७ निवास ८ शरीर काला पड़ा हुआ है ९ जड़ उखड़ गई हो १० भलाई रहित ११ भेद।

समाधान करि[१] सो सबही का। गयेउ जहाँ दिन-कर-कुल-टीका[२]॥
राम सुमंत्रहि आवत देखा। आदरु कीन्ह पितासम लेखा[३]॥
निरखि बदनु कहि भूप रजाई। रघुकुल दीपहिं[४] चलेउ लेवाई॥
राम कुभाँति[५] सचिव सँग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं॥

दो०—जाइ देखि रघु-बंस-मनि, नरपति निपट कुसाजु[५]।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहु बृद्ध गजराजु॥४०॥

सूखहिं अधर जरै सब अंगू। मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू॥
सरुख[६] समीप देख कैकेई। मानहुँ मीचु घरी गनि लेई॥
करुनामय मृदु राम-सुभाऊ। प्रथम दीख दुख सुना न काहू॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी। पूँछी मधुरबचन महतारी॥
मोहि कहु मातु तात-दुख-कारन। करिअ जतन जेहि होइ निबारन[७]॥
सुनहु राम सब कारन एहू। राजहिं तुम्ह पर बहुत सनेहू॥
देन कहेउ मोहिं दुइ बरदाना। माँगेउँ जो कछु मोहिं सुहाना॥
सो सुनि भयेउ भूप उर सोचू। छाँड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू॥

दो०—सुत सनेह इत बचनु उत, संकट परेउ नरेसु।
सकहु तौ आयसु धरहु सिर, मेटहु कठिन कलेसु॥४१॥

निधरक[८] बैठि कहै कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी॥
※जीभ कमान, बचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु लच्छ[९] समाना॥
जनु कठोरपनु धरें सरीरू। सिखै धनुष बिद्या बर-बीरू[१०]॥
सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई॥
मन मुसकाइ भानु-कुल-भानू[११]। रामु सहज-आनंद-निधानू॥

---

१ समझाकर २ सूर्यवंशियों में श्रेष्ठ (सप्त तत्पु०) ३ पिता के समान समझकर ४ रघुकुल के दीपक ५ बुरी तरह ६ क्रोधित ७ रोक ८ निःशंक ९ कोमल निशाना १० श्रेष्ठवली ११ भानुकुल में भानु के समान एश्वर्यशाली।

※ रूपकालंकार गर्भित उत्प्रेक्षा।

बोले बचन बिगत सब दूषन[१] । मृदु मंजुल जनु बाग-बिभूषन[२] ॥
सुनु जननी सोई सुत बड़ भागी । जो पितु-मातु-बचन अनुरागी ॥
तनय मातु-पितु-तोषनि-हारा[३] । दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥

दोहा--मुनिगन मिलनु बिसेषि बन, सबहि भाँति हित मोर ।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, संमत[४] जननी तोर ॥४२॥

भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू । बिधि सब बिधि मोहि सन्मुख[५] आजू ॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा । प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा[६] ॥
सेवहिं अरँडु[७] कल्पतरु त्यागी । परिहरि अमृतु लेहिं बिषु माँगी ॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं । देखु बिचारि मातु मन माहीं ॥
अंबु एकु दुख मोहि बिसेषी । निपट बिकल नरनायकु देखी ॥
थोरिहि बात पितहि दुख भारी । होति प्रतीति न मोहिं महतारी ॥
राउ धीरु गुन-उदधि अगाधू । भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू ॥
जाते मोहि न कहत कछु राऊ । मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ ॥

दोहा--सहज सरल रघुबर-बचन, कुमति कुटिल करि जान ।
चलइ जोंक जल बक्रगति, जद्यपि सलिल समान ॥४३॥

रहसी[८] रानि रामरुखपाई । बोली कपटसनेह जनाई ॥
सपथ[९] तुम्हार, भरत कै आना[१०] । हेतु न दूसर मैं कछु जाना ॥
तुम्ह अपराधु जोग नहिं ताता । जननी-जनक-बंधु-सुख-दाता ॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू । तुम्ह पितु-मातु-बचन-रत-अहहू ॥
पितहिं बुझाइ कहहु, बलि सोई । चौथेंपन जेहिं अजसु न होई ॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हे । उचित न तासु निरादरु कीन्हे ॥

---

१ 'सब दूषण-विगत, मृदु-मंजुल' यह सब वचन विशेष्य के विशेषण हैं। २ सरस्वती के भूषणरूप नम्र भाषा में ३ प्रसन्न करने वाला ४ समर्थन की हुई ५ सीधा ६ मूर्खों का समूह ७ अण्डी का पेड़ ८ प्रसन्न हुई । ९-१० सौगन्ध ।

लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे । मगह[1] गयादिक तीरथ जैसे ॥
रामहिं मातु बचन सब भाए । जिमि सुरसरिगत सलिल सुहाए ॥

दोहा—गइ मुरछा, रामहिं सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह ।
सचिव राम आगमन कहि, बिनय समयसम कीन्ह ॥४४॥

अवनिप[2] अकनि[3] रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे ॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे । चरनु परत नृप रामु निहारे ॥
लिये सनेह बिकल उर लाई । गै मनि मनहुँ फनिक[4] फिरि पाई ॥
रामहिं चितै रहेउ नरनाहू । चला बिलोचन बारि प्रबाहू ॥
सोकबिबस कछु कहै न पारा[5] । हृदय लगावत बारहिं बारा ॥
बिधिहि मनाव राउ मन माहीं । जेहि रघुनाथ न कानन जाहीं ॥
सुमिर महेसहि कहै निहोरी । बिनती सुनहु सदासिव मोरी ॥
आसुतोष[6] तुम्ह अवढर[7] दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी ॥

दोहा—तुम प्रेरक[8] सबके हृदय, सो मति रामहिं देहु ।
बचन मोर तजि रहहिं घर, परिहरि सील सनेहु ॥ ४५ ॥

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊँ । नरक परउँ बरु सुरपुर जाऊँ ॥
सब दुख दुसह सहावउ मोहीं । लोचन ओट रामु जनि होहीं ॥
अस मन गुने राउ नहिं बोला । पीपर-पात-सरिस मनु डोला ॥
रघुपति पितहि प्रेम-बस जानी । पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी ॥
देस काल अवसर अनुसारी । बोले बचन बिनीत बिचारी ॥
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई । अनुचित छमब जानि लरिकाई ॥
अति-लघु बात लागि दुख पावा । काहु न मोहिं कहि प्रथम जनावा ॥
देखि गोसाँइहि पूछेउँ माता । सुनि प्रसंगु[9] भए सीतल गाता ॥

---

१ मगध यह बिहार प्रान्त में एक देश है, इसमें मरने से पुण्य क्षीण होकर नर्कवासी होता है । २ ( अवनि + प, ) राजा ३ सुना ४ साँप की खोई हुई मणि ५ सकना क्रिया के अर्थ में ६ शीघ्र संतुष्ट होने वाले, ७ अटूट ८ प्रेरणा करने वाले ९ हाल ।

दो०—मंगलसमय सनेहबस, सोच परिहरिअ[1] तात।
आयसु देइअ हरषि हिय, कहि पुलके प्रभुगात ॥४६॥

धन्य जनमु जगतीतल[2] तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितुमातु प्रानसम जाकें॥
आयुस पालि जनमफलु पाई। ऐहौं बेगिहि होउ रजाई[3]॥
बिदा मातुसन आवउँ माँगी। चलिहौं बनहिं बहुरि पग लागी॥
अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा। भूप सोकबस उतरु न दीन्हा॥
नगर ब्यापि गई बात सुतीछी[4]। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥
सुनि भये बिकल सकल नर नारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी[5]॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिर सोई। बड़ बिषाद[6] नहिं धीरज होई॥

दो०—मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं[7], सोकु न हृदय समाइ।
मनहुँ ❀ करुन रस-कटकई, उतरी अवध बजाइ ॥४७॥

मिलेहिं माँझ बिधि बात बिगारी। जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी॥
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ॥
निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा बिषु चाहति चीखा॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुबंस-बेनु-बन आगी॥
पालव बैठि पेड़ एहि काटा। सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा॥
सदा रामु एहि प्रानसमाना। कारन कवन कुटिलपनु ठाना॥
सत्य कहहिं कबि नारिसुभाऊ। सब बिधि अगम अगाध दुराऊ॥
निज प्रतिबिंबु बरुक गहि जाई। जानि न जाइ नारिगति भाई॥

दो०—काह न पावकु जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाइ ॥४८॥

---

१ छोड़ दीजिये २ पृथ्वी पर ३ आज्ञा ४ (तीक्ष्ण) ५ आगि ६ दुःख ७ चुचाते हैं। ❀ मानों करुणा रस का कटक अयोध्या में गाजे बाजे के साथ उतरा (उत्प्रेक्षालंकार)।

का सुनाइ बिधि काह सुनावा । का देखाइ चह काह देखावा ॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा । बरु बिचारि नहिं कुमतिहि[1] दीन्हा ॥
जो हठि भयेउ सकल दुख-भाजनु । अबला बिबस ग्यानु गुनु गाजनु ॥
एक धरम-परमिति[2] पहिचानें । नृपहि दोसु नहिं देहिं सयानें ॥
सिबि-दधीचि-हरिचंद* कहानी । एक एक सन कहहिं बखानी ॥
एक भरत कर संमत[3] कहहीं । एक उदास-भाय सुनि रहहीं ॥
कान मूँदि कर रद[4] गहि जीहा । एक कहहिं यह बात अलीहा[5] ॥
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारें । राम भरत कहँ प्रान† पियारें ॥

दो०—चंद चुवइ बरु अनलकन[6], सुधा होइ विष तूल[7] ।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु, भरतु रामप्रतिकूल ॥४९॥

---

१ (बहुव्रीहि में अर्थ) खोटी है बुद्धि जिसकी, उसको २ धरम की मर्यादा ३ सलाह से ४ दाँत ५ असत्य ६ अग्नि-कण ७ तुल्य ।

* रघु के वंश में राजा हरिश्चन्द्र बड़ा धर्मात्मा हुआ । एक बार वशिष्ठजी ने विश्वामित्र से इसके दान और सत्य को सराहा । उन्होंने परीक्षा करने को पूरा राज्य माँगा । जब उसने दान दिया साथ में दक्षिणा माँगी । परन्तु उसके पास कहाँ थी जो देता । यह कहा कि मैं नौकरी करके दूँगा । उन्होंने कहा 'हम यहाँ उद्यम भी न करने देंगे । तब राजा काशी में बिकने गये । विश्वामित्र दक्षिणा लेने पहुंचे तब राजा ने पुत्र और स्त्री को बेचकर कुछ धन दिया और फिर शेष के लिये आपने चांडाल की नौकारी की । स्मशान पर कर उगाहना स्वीकार कर ऋषि की दक्षिणा चुकाई । कुछ काल में जब इसका पुत्र मर गया और उसकी स्त्री लड़के को स्मशान पर ले गई तो राजा ने इससे भी कर माँगा । रानी ने बहुत मिन्नत की । पर राजा ने एक न सुनी । स्त्रीने दुखी होकर आधा वस्त्र फाड़ने को हाथ किया उसी समय भगवान् ने आकर हाथ रोका और प्रसन्न हुए । पुत्र को जिला कर फिर अयोध्या के राज-सिंहासन पर बैठाया; अन्त में सब को मुक्ति दी ।

एक बिधातहि दूषनु देहीं । सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं ॥
खरभरु [1]नगर सोचु सब काहू । दुसह दाहु उर मिटा उछाहू ॥
बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी[2] । जे प्रिय परम कैकई केरी ॥
लगीं देन सिख सीलु[3] सराही । बचन बानसम लागहिं ताही ॥
भरतु न मोहि प्रिय रामसमाना । सदा कहहु यहु सबु जगु जाना ॥
करहु राम पर सहजसनेहू । केहि अपराध आजु बनु देहू ॥
कबहुँ न कियेहु सवति आरेसू[4] । प्रीति प्रतीति जान सबु देसू ॥
कौसल्या अब काह बिगारा । तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा ॥

दो० – सीय कि पिय सँगु परिहरिहिं लषनु कि रहिहहिं धाम ।
राजु कि भूँजब भरत पुर नृपु कि जिइहिं बिनु राम ॥५०॥

अस बिचारि उर छाड़हु कोहू । सोक कलंक कोठि[5] जनि होहू ॥
भरतहिं अवसि देहु जुबराजू । कानन काह राम कर काजू ॥
नाहिंन रामु राज के भूखे । धरमधुरीन बिषयरस रूखे ॥
गुरुगृह बसहु रामु तजि गेहू । नृप सन अस बर दूसर लेहू ॥
जौं नहिं लगिहहु कहें हमारें । नहिं लागहि कछु हाथ तुम्हारें ॥
जौं परिहास[6] कीन्ह कछु होई । तौ कहि प्रगट जनावहु सोई ॥
रामसरिस सुत कानन जोगू । काह कहहिं सुनि तुम्ह कहँ लोगू ॥
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई । जेहि बिधि सोकु कलंकु नसाई ॥

छंद—जेहि भाँति सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुल पालही ॥
हठि फेरु रामहिं जात बन जनि बात दूसरि चालही ॥
जिमि भानु बिनु दिन, प्रानबिनु तनु, चंदुबिनुजिमिजामिनी[7] ।
तिमि अवध तुलसीदासप्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी ।

---

१ खलबली २ बड़ी बूढ़ी ३ नम्र स्वभाव ४ डाह ५ कुठीला ६ हँसी ७ रात्रि ।

सो०—सखिन्ह सिखावनु दीन्ह, सुनत मधुर परिनाम हित।
तेइँ कछु कान न कीन्ह,[१] कुटिल प्रबोधी कूबरी ॥५१॥

उतरु न देइ दुसह[२] रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी॥
व्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं,कहत मतिमंद अभागी॥
राजु करत येह दैव बिगोई[३]। कीन्हेसि अस जस करै न कोई॥
एहिं विधि बिलपहिं-पुर-नर-नारी। देहिं कुचालिहि[४] कोटिक गारी॥
जरहिं बिषमजुर[५],लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा॥
अति बिषाद सब लोग लोगाईं। गए मातु पहिं राम गोसाईं॥
मुखु प्रसन्न चित्त चौगुन चाऊ[६]। मिटा सोचु जनि राखइ राऊ॥

दो०—नवगयंद[७] रघुबीर मनु, राजु अलान[८] समान।
छूट जानि बनगवनु सुनि, उर आनँद अधिकान। ५२॥

रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु-पद नायेउ माथा॥
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषनबसन निछावरि कीन्हे॥
बार बार मुख चुंबति माता। नयन-नेहजलु पुलकित गाता॥
गोद राखि पुनि हृदय लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद[९] सुहाए॥
प्रेमप्रमोद न कछु कहि जाई। रंक[१०] धनदपदवी[११] जनु पाई॥
सादर सुन्दर बदनु निहारी। बोली मधुर बचन महतारी॥
कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद-मंगल-कारी॥
सुकृत सील सुख सींव सुहाई। जनम लाभ कै अवध अघाई[१२]॥

दो०—जेहि चाहत नर नारि सब, अति आरत[१३] एहि भाँति।
जिमि चातकि चातक तृषित, बृष्टि सरद रितु स्वाँति ॥५३॥

---

१ ध्यान नहीं दिया २ कठिन ३ भंड बिगोया, खाने खराब किया ४ खोटी ५ विषमज्वर ६ उत्साह ७ नया हाथी ८ हाथी बाँधने की साँकर ९ स्तन १० गरीब ११ कुबेर का पद १२ पूर्ण १३ दुखी।

* उपमालंकार।

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू । जो मन भाव मधुर कछु खाहू ॥
पितु समीप तब जायेहु मैया । भै बड़ि बार जाइ बलि मैया ॥
मातु बचन सुनि अति अनुकूला । जनु सनेह सुर-तरु[३] के फूला ॥
सुखमकरंद[४] भरे स्रियमूला[५] । निरखि राम-मनु-भँवरु[६] न भूला ॥
धरमधुरीन[७] धरमगति जानी । कहेउ मातु-सन अति मृदु बानी ॥
पिता दीन्ह मोहि कानन राजू । जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥
आयसु देहि मुदित मन माता । जेहि मुदमंगल कानन जाता ॥
जनि सनेहबस डरपसि भोरें । आनँद अंब अनुग्रह तोरें ॥

दोहा—बरष चारि दस बिपिन बसि, करि पितु-बचन प्रमान ।
आइ पाय पुनि देखिहौं, मन जन करसि मलान ॥५४॥

बचन बिनीत मधुर रघुबर के । सर[८] सम लगे मातु उर करके[९] ॥
सहमि सूखि सुनि सीतल बानी । जिमि जवास पर पावस पानी ॥
कहि न जाय कछु हृदय-बिषादू । मनहुँ मृगी सुनि केहरि-नादू[१०] ॥
नयन सजल तन थरथर काँपी । माँजहि[११] खाइ मीन जनु माँपी ॥
धरि धीरजु सुत बदनु निहारी । गदगद बचन कहति महतारी ॥
तात पितहि तुम्ह प्रानपियारे । देखि मुदित नित चरित तुम्हारे ॥
राजु देन कहँ सुभ दिन साधा[१२] । कहेउ जान बन केहि अपराधा ॥
तात सुनावहु मोहि निदानू[१३] । को दिन-कर कुल भयेऊ कृसानू[१४] ॥

दोहा—निरखि रामरुख सचिवसुत, कारन कहेउ बुझाइ ।
सुनि प्रसंग रहि मूक[१५] जिमि, दसा बरनि नहिं जाइ ॥५५॥

---

१ देर २ वलिहारी ३ स्नेह रूपी कल्प वृक्ष ४ सुखरूप रस से ५ कल्याण की मूल ॐ विशेषोक्ति-अलंकर-प्रबल हेतु होने पर भी कार्य न हो ६ राम का मन रूपी भौंरा ७ धरम-धुरीन-धर्म को आगे से खींचने वाले ८ बाण ९ करकना क्रिया के सामान्य भूत का रूप १० सिंह-ध्वनि ११ पहले बरसाती प्रवाह में उत्पन्न हुए झाग १२ निश्चय किया १३ हेतु १४ अग्नि १५ गूँगे की भाँति ।

राखि न सकै न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू[१] ॥
लिखत सुधाकर[२] गा लिखि राहू। बिधिगति बाम[३] सदा सब काहू ॥
धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छुछूंदरि केरी[४] ॥
राखौं सुतहि करउँ अनुरोधू[५]। धरम जाय अरु बंधुबिरोधू[६] ॥
कहौं जान बन तौ बड़ि हानी। संकट-सोच-बिबस भै रानी ॥
बहुरि समुझि तियधरमु[७] सयानी। रामु भरतु दोउ सुत सम जानी ॥
सरल सुभाउ राममहतारी। बोली बचन धीर धरि भारी ॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितुआयसु सब धरम क टीका[८] ॥

दो०—राजु देन कहि दीन्ह बनु, मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि, प्रजहि प्रचंड कलेसु ॥५३॥

जौं केवल पितु-आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता† ॥
जौं पितुमातु कहेउ बन जाना‡। तौ कानन सत-अवध-समाना ॥
पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरनसरोरुह-सेवी ॥
अंतहु उचित नृपहि बनबासू*। बय[९] बिलोकि हिय होइ हरासू ॥
बड़भागी बनु, अवध अभागी। जो रघु-बंस तिलक तुम्ह त्यागी ॥
जौं सुत कहउँ संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदय होइ संदेहू ॥
पूत परमप्रिय तुम्ह सबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के ॥
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाउँ। मैं सुनि बचन बैठि पछिताउँ ॥

दो०—यह बिचारि नहिं करउँ हठ, झूठ सनेह बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात बलि[१०], सुरति बिसरि जनि जाइ ॥५७॥

---

१ कठिन दुःख २ चन्द्रमा ३ टेढ़ी ४ साँप छछूंदर को चूहा समझ पकड़ ले, यदि खाय तो मरै और उगले तो अन्धा होवे। ५ जिद ६ भाई भाई में भेद भाव ७ स्त्रीधर्म (पतिव्रत धर्म) ८ तिलक ९ आयु * आयु के अन्तिम भाग में सूर्यवंशी राजा वाणप्रस्थ लेकर बन जाते थे। १० बलिहारी जाऊँ।

†पितुर्दशगुणा माता गौरवेणाति रिच्यते।
‡मातुर्दश गुणा मान्या विमाता धर्मभीरुणा ॥

देव पितर सब तुम्हहिं गोसाईं। राखहु पलक नयन की नाईं[१] ॥
अवधि अंबु[२] प्रियपरिजन मीना। तुम्ह करुनाकर धरमधुरीना ॥
अस बिचार सोइ करहु उपाई। सबहिं जिअत जेहि भेंटहु आई ॥
जाहु सुखेन[३] बनहिं बलि जाऊँ। करि अनाथ जन-परिजन-गाऊँ ॥
सब कर आजु सुकृतफल बीता। भयेउ करालुकालु बिपरीता ॥
बहु बिधि बिलपि चरन लपटानी। परमअभागिन आपुहि जानी ॥
दारुन-दुसह-दाहु उर ब्यापा। बरनि न जाइ बिलापकलापा ॥
राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु बचन बहुरि समझाई ॥

दो०—समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु-पद-कमल जुग, बंदि बैठि सिरु नाइ ॥५८॥

दीन्हि असीस सासु मृदुबानी। अतिसुकुमारि देखि अकुलानी ॥
बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूपरासि पति-प्रेम-पुनीता ॥
चलन चहत बन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू ॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतब कछु जाइ न जाना ॥
चारु चरननख लेखति धरनी। नूपुर मुखर[६] मधुर कबि बरनी ॥
मनहुँ प्रेमबस बिनती करहीं। हमहिं सीयपद जनि परिहरहीं ॥
मंजुबिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राममहतारी ॥
तात सुनहु सिय अतिसुकुमारी। सासु-ससुर-परिजनहिं पियारी ॥

दो०—पिता जनक भूपाल-मनि, ससुर भानु-कुल-भानु[७]
पति रबि-कुल कैरव[८]-बिपिन बिधु गुन रूप-निधानु ॥५९॥

---

१ भाँति २—१४ वर्ष की सीमा जल है ३ सुख पूर्वक ४ नीचा मुँह करके ५ पति-प्रेम द्वारा पवित्र ६ बिछुओं की ध्वनि ७ भानुकूल के भानु, षष्ठी, ८ रवि का कुल. रविकुल—षष्ठी, तत्पु० कैरवों का विपिन, कैरव-विपन; ष० त० रविकुलरूपी कैरवों का विपिन, रविकुल-कैरव-विपिन रूपक कर्मधारय; रवि-कुल-कैरव विपिन बिध-रविकुलरूपी कैरवों के विपन को बिधु-च० त०

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई । रूपिरासि गुन सील सुहाई ॥
नयनपुतरि करि[१] प्रीति बढ़ाई । राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई ॥
कलपबेलि जिम बहु बिधि लाली[२] । सींचि सनेह सलिल[३] प्रतिपाली ॥
फूलत फलत भयउ बिधि बामा । जानि न जाय काह परिनामा ॥
पलँगपीठ तजि गोद हिंडोरा[४] । सिय न दीन्ह पगु अवनि[५] करोरा ॥
जिअनमूरि[६] जिमि जोवत[७] रहऊँ । दीपबाति नहिं टारन कहऊँ ॥
सोइ सिय चलन चहति बन साथा । आयुस काह होइ रघुनाथा ॥
चंद-किरन रस-रसिक चकोरी[८] । रबिरुख नयन सकै किमि जोरी ॥

दो०—करि, केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि ।
विषवाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवन मूरि । ६०॥

बनहित कोल किरात किसोरी । रची बिरंचि बिषय-सुख-भोरी[१०] ॥
पाहनकृमि[११] जिमि कठिनसुभाऊ । तिन्हहिं कलेसु न कानन काऊ ॥
कै तापसतिय काननजोगू । जिन तपहेतु तजा सब भोगू ॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती । चित्रलिखित कपि[१२] देखि डराती ॥
सुर-सर-सुभग बनज बन-चारी । डाबर-जोग कि हंसकुमारी ॥
अस बिचार जस आयसु होई । मैं सिख देउँ जानकिहि सोई ॥
जौं सिय भवन रहै कह अंबा । मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा[१३] ॥
सुनि रघुबीर मातु-प्रिय बानी । सील सनेह सुधा[१४] जनु सानी ॥

दो०—कहि प्रियबचन बिबेक-मय, कीन्ह मातु-परितोष[१५] ।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि बिपिन-गुन-दोष[१६] ॥६१॥

---

१ भाँति २ लाड़ किया ३ पानी ४ पलंग, पीठ (पीढ़ा) गोद और हिंडोला ५ धरती ६ संजीवनी बूटी ७ देखती रही ८ चन्द्र-किरण-रस-रसिक-(चकोरी का विशेषण ) षष्ठी तत्पु० ९ बूटी १० विषय-सुख से रहित-पंचमी तत्पु० ११ पहाड़ी कीड़ा १२ चित्र में लिखित-कपि १३ सहारा १४ अमृत १५ सन्तुष्ट १६ गुन और दोष, गुन-दोष, (द्वन्द्व) विपिन-गुन दोष विपिन के गुन और दोष ( षष्ठी तत्पु० ) ।

मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन माहीं॥
राजकुमारि सिखावन सुनहू। आन भाँति[1] जिय जनि कछु गुनहू॥
आपन मोर नीक जो चहहू। बचन हमार मानि गृह रहहू॥
आयसु मोरि सासुसेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई॥
एहि ते अधिक धरमु नहीं दूजा। सादर सासु-ससुर-पद-पूजा॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेमबिकल मति-भोरी[2]॥
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझायेहु मृदुबानी॥
कहउँ सुभाय सपथ सत मोहीं। सुमुखि मातुहित राखौं तोही॥

दो०—गुरु-स्रुति-संमत[3] धरमफलु, पाइअ बिनहिं कलेस[4]।
हठबस सब संकट[5] सहे गालव*नहुष नरेश ×॥६२॥

---

१ दूसरी बात २ भोरी है मति जिसका ( बहुव्रीहि ) ३ गुरु और श्रुति से (साथ) सम्मत अर्थात् सलाह मानकर ४ (क्लेश) दुःख ५ आपत्तियाँ।

*गालव—ये विश्वामित्र जी के शिष्य थे। इनकी सेवा के वशीभूत होकर गुरु ने इन्हें विद्या में दक्ष कर दिया। जब ये पूर्ण विद्वान् होगये, तब इन्होंने गुरु से दक्षिणा माँगने का अनुरोध किया। गुरू ने कहा कि "हम तेरी सेवा से संतुष्ट हैं, हमें दक्षिणा नहीं चाहिये" परन्तु इन्होंने जिद न छोड़ी। तब गुरु ने क्रोधित होकर ८०० श्याम वर्ण घोड़े माँगे। गालव बड़े कष्ट से केवल ६०० घोड़े इकट्ठे कर सके।

× नहुष—पुरुरवा का ज्येष्ठ पुत्र नहुष बड़ा प्रतापी और धर्मात्मा था। वृत्रासुर के मारने से इन्द्र को ब्रह्म-हत्या लग गई इससे वह छिप गया। इन्द्रासन सूना होने के कारण नहुष को उस पर बिठला दिया गया। गद्दी पर बैठने से नहुष को अभिमान होगया और इन्द्राणी से विवाह करना चाहा। नहुष की जिद पर इन्द्राणी ने कहा कि यदि राजा 'अपूर्व' सवारी में बैठकर आवेंगे तो उनकी इच्छा पूरी हो सकती है। राजा यह जानकर सप्तर्षि से पालकी उठवा कर गया। पालकी में बैठकर अगस्त ऋषि के सिर पर पैर रख दिया और सर्प सर्प (जल्दी चलो) कहने लगा। इस लिये अगस्त ऋषि ने क्रोधित होकर कहा कि तुम सर्प हो जाओ। राजा उनके शाप से सर्प हो गया।

मैं पुनि करि प्रमान[1] पितुबानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुँदरि सिखबनु[2] सुनहु हमारा॥
जौ हठ करहु प्रेमबस बामा[3]। तौ तुम्ह दुख पाउब परिनामा॥
काननु कठिन भयंकर भारी। घोर घामु, हिम, बारि बयारी[4]॥
कुस कंटक मग काँकर नाना। चलत पयादेहिं बिनु पदत्राना[5]॥
चरनकमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर[6] भारे॥
कंदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध[7] न जाहिं निहारे[8]॥
भालु बाघ वृक[9] केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा॥

दो०—भूमि सयन बलकलबसन[10], असनु[11] कंद-फलमूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, सबइ समय अनुकूल॥६३॥

नर अहार रजनीचर करहीं। कपटबेष बिधि कोटिक धरहीं॥
लागै अति पहार कर पानी। बिपिन-बिपति नहिं जाइ बखानी॥
ब्याल कराल बिहँग बन घोरा। निसिचर-निकर[12] नारि-नर-चोरा॥
डरपहि धीर गहन[13] सुधि आएँ, मृगलोचनि तुम्ह भीरु[14] सुभाएँ॥
हंस-गवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहिं देइहिं लोगू॥
मानस-सलिल-सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवनपयोधि मराली॥
नव-रसाल-बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंदबदनि दुख कानन भारी॥

दो०—सहज सुहृद-गुरु स्वामि-सिख, जो न करैं सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हितहानि॥६४॥

सुनि मृदुबचन मनोहर पिअके। लोचन ललित† भरे जल सियके॥

---

१ पूरी करके २ (शिक्षा) उपदेश ३ स्त्री, (उदासीनता की दशा का सम्बोधन) ४ हवा ५ बिना जूता के पैदल ६ पर्वत ७ गहरे ८ देखने से भय मालूम होता है। ९ भेड़िया १० छाल के वस्त्र ११ भोजन १२ राक्षसों का समूह १३ वन १४ स्वभाव से डरपोक १५ खारी समुद्र।

†पाठान्तर 'नलिन'।

सीतल सिख दाहक भै कैसे ❀। चकइहिं सरद-चंद निसि जैसे ॥
उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनिकुमारी[1]॥
लागि सासुपग कह कर जोरी। छमबि देवि बड़ि अबिनय[2] मोरी॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई॥
मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं। पिय बियोग सम दुख जग नाहीं॥

दोहा—प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल-कुमुद-बिधु सुरपुर नरकसमान ॥६५॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद-समुदाई॥
सासु ससुर गुरु सजन सहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु[3] ते ताते॥
तनु धनु धामु धरनि सुरराजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू॥
भोग रोग सम, भूषन भारू। जम-जातना सरिस[4] संसारू॥
प्रान नाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥
जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद-बिमल-बिधु-बदनु[5] निहारे॥

दोहा—खग मृग परिजन नगर-बनु बलकल बिमल दुकूल[6]।
नाथ साथ सुर-सदन सम परनसाल[7] सुखमूल ॥६६॥

बनदेवी बनदेव उदारा। करिहहिं सासु-ससुर-सम-सारा[8]॥
कुस-किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई॥
कंद मूल फल अमिअ[9] अहारू। अवध-सौध-सत सरिस पहारू[10]॥
छिनुछिनु प्रभु-पद-कमल बिलोकी। रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी॥

---

१ सीताजी, २ ढाठता ३ सूर्य ४ यम दण्ड के सदृश ५ शरद ऋतु का विमल विधु (उसके समान उज्ज्वल मुख इस प्रकार विग्रह है ६ रेशमी वस्त्र ७ झोंपड़ी ८ सार-सँभार ९ अमृत १०पहारू अवधसतसौध-(महल) सरिस, पहाड़, अयोध्याके सौ भवनोंके तुल्य हैं। ❀विषमालंकार-कारण के विरुद्ध कार्य।

बन-दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय बिषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु बियोग लव-लेस समाना । सब मिलि होहिं न कृपानिधाना ॥
अस जिय जानि सुजान सिरोमनि । लेइअ संग मोहि छाँड़िअ जनि ॥
बिनती बहुत करउँ का स्वामी । करुनामय उर-अंतर-जामी ॥
दोहा० — राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत जानि अहि प्रान ।
दीनबंधु सुन्दर सुखद, सील-सनेह-निधान ॥ ६७ ॥
मोहि मग चलत न होइहैं हारी । छिनु छिनु चरन-सरोज निहारी ॥
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं । मारग जनितसकल श्रम हरिहौं ॥
पाँय पखारि बैठि तरुछाहीं । करिहौं बाउ मुदित मनमाहीं ॥
स्रम-कन सहित[1] स्याम तनु देखें । कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें ॥
सम महि तृन-तरु-पल्लव डासी[2] । पाँइ पलोटिहि सब निस दासी ॥
बार बार मृदु मूरति जोही[3] । लागहि ताति बयारि न मोही ॥
को प्रभु संग मोहि चितवनिहारा । सिंघबधुहिजिमि ससक[4] सिआरा ॥
मैं सुकुमारि नाथ बनजोगू । तुम्हहिं उचित तप मो कहँ भोगू ॥
दोहा—ऐसेउ बचन कठोर सुनि, जौन हृदय बिलगानि ।
तौ प्रभु-बिषम-बियोग-दुख, सहिहहिं पाँवर[5] प्रान ॥ ६८ ॥
अस कहि सीय बिकल भै भारी । बचन बियोग न सकी सँभारी ॥
देखि दसा रघुपति जिय जाना । हठ राखे नहिं राखहिं प्राना ॥
कहेउ कृपालु भानु-कुल-नाथा । परि हरि सोचु चलहु बन साथा ॥
नहिं बिषाद कर अवसर आजू । बेगि करहु बन-गवन-समाजू ॥
कहि प्रियबचन प्रिया समुझाई । लगे मातुपद आसिष पाई ॥
बेगि प्रजा दुख मेटिब आई । जननी निठुर[6] बिसरि जनि जाई ॥

---

१ पसीनों की बूँदों सहित २ बिछाकर ३ देखकर ४ खरगोश ५ नीच ६ (निष्ठुर)
† काकु वक्रोक्ति अलंकार, जहाँ ध्वनि से उल्टा अर्थ निकले, जैसे क्या मैं सुकुमारि और आप बन के योग्य हैं ! अर्थात् नहीं ।

फिरहि दसा विधि बहुरि कि मोरी। देखिहौं नयन मनोहर जोरी ॥
सुदिन सुघरी तात कब होइहि । जननी जिअत बदनबिधु जोइहि ॥

दो०—बहुरि बच्छ[1] कहि लालु कहि, रघुपति रघुबर तात ।
कबहिं बोलाइ लगाइ हिय हरष निरखिहौं गात ॥६९॥

लखि सनेह-कातरि[2] महतारी । बचनु न आव बिकल भै भारी ॥
राम प्रबोध कीन्ह बिधि नाना । समउ सनेहु न जाइ बखाना ॥
तब जानकी सासु-पग लागी । सुनिअ माय मैं परम अभागी ॥
सेवा समय दैव बन दीन्हा । मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा ॥
तजब छोभु[3] जनि छाँड़िय छोहू[4] । करमु कठिन कछु दोसु न मोहू ॥
सुनि सिय बचन सासु अकुलानी । दसा कवनि बिधि कहौं बखानी ॥
बारहिं बार लाइ उर लीन्हीं । धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही ॥
अचल होउ अहिवातु[5] तुम्हारा । जब लगि गंग जमुन जल-धारा ॥

दो०—सीतहि सासु असीस सिख, दीन्ह अनेक प्रकार ।
चली नाइ पदपदुम सिरु, अति हित बारहिं बार ॥७०॥

समाचार जब लछिमन पाए । ब्याकुल बिलखि बदन उठि धाए ॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा । गहे चरन अतिप्रेम अधीरा ॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े । मीनु दीनु जनु जल तें काढ़े ॥
सोचु हृदय बिधि का होनिहारा । सब सुखु सुकृत सिरान[6] हमारा
मो कहँ काह कहब रघुनाथा । रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा ॥
राम बिलोकि बंधु करजोरें । देह गेह[7] सब सन तृन तोरें[8] ॥
बोले बचनु राम नयनागर[9] । सील सनेह-सरल-सुख-सागर ॥
तात प्रेम बस जनि कदराहू । समुझि हृदय परिनाम उछाहू ॥

---

१ (वत्स), बच्चा २ सनेह से कातर वा सनेह में कातर, इस प्रकार तृतीया वा सप्तमी तत्पु० दोनों हो सकते हैं ३ दुःख ४ कृपा, या प्रेम ५ सौभाग्य ६ समाप्त हुआ ७ ( गृह ) ८ सम्बन्ध तोड़े हुए ९ नीति में चतुर ।

दो०—मातु-पिता-गुरु-स्वामि-सिख, सिर धरि करहिं सुभाय ।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर, नतरु[1] जनमु जग जाय ॥७१॥

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई । करहु मातु-पितु-पद सेवकाई ॥
भवन भरत रिपुसूदन[2] नाहीं । राउ बृद्ध, मम दुख मन माहीं ॥
मैं बन जाउँ तुम्हहिं लेइ साथा । होइ सबहि बिधि अवध अनाथा ॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू । सब कहँ परै दुसह-दुख-भारू[3] ॥
रहहु करहु सब करि परितोषू । नतरु तात होइहि बड़ दोषू ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥
रहहु तात अस नीति बिचारी । सुनत लषन भये ब्याकुल भारी ॥
सिअरे[4] बदन सूखि गये कैसे । परसत[5] तुहिन[6] तामरस[7] जैसे ॥

दो०—उतरु न आवत प्रेमबस, गहे चरन अकुलाय ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह, तजहु त काह बसाइ ॥७२॥

दीन्ह मोहि सिख नीक[8] गोसाईं । लागि अगम[9] अपनी कदराई[10] ॥
नरबर धीर धरम धुर-धारी । निगम[11] नीति कहँ ते अधिकारी ॥
मैं सिसु प्रभु-सनेह-प्रतिपाला । मंदरुमेरु[12] कि लेहिं मराला† ॥
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू । कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू[13] ॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई[14] । प्रीतिप्रतीति निगम निजु[15] गाई ॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी । दीनबंधु उर-अंतरजामी ॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही । कीरति-भूति सुगति प्रिय जाही ॥
मन-क्रम-बचन चरनरत होई । कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई ॥

---

१ नहीं तो २ शत्रुघ्न ३ घोर दुःख का बोझ ४ कोमल, नम्र ५ (स्पर्श) छूने से ६ पाला ७ कमल ८ अच्छी ९ कठिन १० कायरता से ११ वेद १२ मंदराचल तथा सुमेरुपर्वत १३ विश्वास कीजिये १४ सम्बन्ध १५ अपने, स्वयं ।

† क्या हंस का बच्चा मंदराचल तथा सुमेरुपर्वत को उठा सकता है? अर्थात् नहीं; ऐसे ही मैं आपके प्रेम से पाला हुआ बालक राजनीति तथा वेद का अधिकारी नहीं हो सकता ।

दो०—करुनासिंधु सुबंधु के, सुनि मृदुबचन बिनीत[१] ।
समुझाए उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत[२] ॥७३॥

माँगहु बिदा मातु सन जाई । आवहु बेगि चलहु बन भाई ॥
मुदित भये सुनि रघुबर बानी । भयेउ लाभ बड़, गइ[३] बड़ि हानी ॥
हरषित हृदय मातु पहिं आए । मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए ॥
जाइ जननि-पग नायेउ माथा । मनु रघुनंदन-जानकि साथा ॥
पूँछें मातु मलिन मन देखी । लषन कही सब कथा बिसेखी ॥
गई सहमि[४] सुनि बचन कठोरा । मृगी देखि दव[५] जनु चहुँ ओरा ॥
लषन लखेउ भा अनरथ आजू । एहि सनेह बस करब अकाजू ॥
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं । जाइ संग बिधि, कहहि कि नाहीं ॥

दो०—समुझि सुमित्रा राम-सिय-रूप-सुसील सुभाउ ।
नृप सनेह लखि धुनेउ सिरु पापिन दीन्ह कुदाउ[६] ॥७४॥

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी । सहज सुहृद बोली मृदु बानी ॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही । पिता रामु सब भाँति सनेही ॥
अवध तहाँ जहँ राम-निवासू । तहइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू ॥
जौं पै सीय-रामु बन जाँहीं । अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ॥
गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं । सेइअहि सकल प्रान की नाईं ॥
राम प्रानप्रिय जीवन जी के[७] । स्वारथ रहित सखा[८] सबही के ॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें । सब मानिअहि राम के नातें ॥
अस जिय जानि सँग बन जाहू । लेहु तात जग जीवनुलाहू[९] ॥

दो०—भूरि भागभाजनु[१०] भयेहु मोहि समेत, बलि जाउँ ।
जौं तुम्हरे मन छाँड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ ॥७५॥

---

१ नम्र २ भयभीत ३ दूर होगई ४ सन्नाटे में आगई, दंग रह गई ५ अग्नि ६ भयंकर घात ७ जीव के जीवन (प्राण) हैं ८ प्यारे (सखा ४ प्रकार के होते हैं १ सहृद, २ प्रिय ३ न्यून ४ नम्र) ९ जीवन का लाभ । १० बड़े भाग्य-शाली ।

पुत्रवती जुबती[१] जग सोई । रघु-पति भगतु जासु सुत होई ॥
नतरु बाँझभलि, बादि[२] बिआनी[३] । रामबिमुख-सुत तें हितहानी ॥
तुम्हरेहि भाग रामु बन जाँहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू । राम-सीय-पद सहज सनेहू ॥
रागु[४] रोषु इरिषा[५] मदु मोहू । जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू ॥
सकल प्रकार बिकार[६] बिहाई । मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू । सँग पितु मातु राम-सिय जासू ॥
जेहि न रामु बन लहहिं कलेसू । सुत सोइ करहु इहै उपदेसू ॥

छंद—उपदेसु एहु जेहि जात तुम्हरे, रामसिय सुख पावहीं ।
पितु-मातु-प्रिय-परिवारु-पुर-सुख-सुरति बन बिसरावहीं ॥
तुलसी-सुतहिं सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई ।
रति[७] होउ अबिरल[८] अमल[९] सिय-रघुबीर-पदनितनित नई ॥

सो०—मातुचरनु सिरु नाइ, चले तुरत संकित हृदय ।
बागुर[१०] बिषम[११] तोराइ, मनहुँ भाग मृगु भागबस* ॥७६॥

गए लषनु जहँ जानकिनाथू । भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू ॥
बंदि राम-सिय-चरन सुहाए । चले संग नृपमंदिर आए ॥
कहहिं परसपर पुर नर-नारी । भलि बनाइ बिधि बात बिगारी ॥
तन कृस[१२] मन दुखु बदन मलीने । बिकल मनहुँ माखी मधु छीने ॥
कर मीजहिं,[१३] सिरधुनि पछिताहीं । जनु बिनु पंख बिहंग अकुलाहीं ॥
भै बड़ि भीर भूप–दरबारा । बरनि न जाइ बिषादु अपारा ॥
सचिव उठाइ राउ बैठारे । कहि प्रिय बचन राम-पगु धारे ॥
सियसमेत दोउ तनय निहारी । ब्याकुल भएउ भूमिपति भारी ॥

---

१ स्त्री २ व्यर्थ ३ पुत्र पैदा किया ४ प्रीति ५ ईर्षा, जलन ६ मन की गति ७ प्रीति ८ अनुपम ९ पवित्र १० फंदा ११ कठिन १२ दुर्बल १३ मलते हैं ।

*यहाँ अयोध्या में रहना फन्दा, लक्ष्मण मृग (उत्प्रेक्षालंकार) ।

दो०—सीयसहित सुत सुभग[1] दोउ, देखि देखि अकुलाय ।
बारहिं बार सनेहबस, राउ लेइ उर लाइ ॥७७॥
सकै न बोलि बिकल नर नाहू । सोकजनित उर दारुन दाहू ॥
नाइ सीसु पद अति अनुरागा । उठि रघुबीर बिदा तब माँगा ॥
पितु असीस आयसु मोहि दीजै । हरषसमय बिसमय कत कीजै ॥
तात किए प्रिय प्रेमप्रमादू[2] । जसु जग जाइ,होइ अपबादू[3] ॥
सुनि सनेहबस उठि नरनाहाँ । बैठारे रघुपति गहि बाहाँ ॥
सुनहु तात तुम्ह कहँ मुनि कहहीं । राम चराचरनायक अहहीं[4] ॥
सुभ अरु असुभ करम-अनुहारी । ईसु देइ फलु हृदय बिचारी ॥
करै जो करम पाव फल सोई । निगम नीति असि कह सबु कोई ॥
दो०—और करै अपराध कोउ, और पाव फल भोगु ।
अति बिचित्र भगवंतगति को जग जानै जोगु ॥७८॥
राय रामराखन हित लागी । बहुत उपाय किये छल त्यागी ॥
लखी[5] रामरुख, रहत न जाने । धरम-धुरंधर धीर सयाने ॥
तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही । अतिहित बहुत भाँति सिख दीन्ही ॥
कहि बन के दुख दुसह सुनाए । सासु ससुर पितु सुख समुझाए ॥
सियमन रामचरन-अनुरागा । घरु न सुगमु,[6] बनु बिषमु न लागा ॥
औरउ सबहि सीय समुझाई । कहि कहि बिपिन-बिपति-अधिकाई ॥
सचिवनारि गुरुनारि सयानी । सहित सनेह कहहिं मृदु बानी ॥
तुम्ह कहँ तौ न दीन्ह बनबासू । करहु जो कहहिं ससुर-गुर-सासू ॥
दो०—सिख सीतलि हित मधुर मृदु,सुनि सीतहि न सोहानि[7] ॥❀
सरद-चंद चंदनि लगत, जनु चकई अकुलानि ॥ ७९ ॥

---

१ सुन्दर २ प्रेम से भूल ३ अपयश, बुराई ४ चर और अचर सृष्टि के स्वामी हैं । ५ देखा, समझा ६ आराम का ७ अच्छी न लगी ।

❀तृतीय विषम अलंकार—जहाँ कारण के गुण से कार्य का गुण वा कारण की क्रिया से कार्य की क्रिया विरुद्ध हो ।

सीय सकुच बस उतरु न देई । सो सुनि तमकि[१] उठी कैकेई ॥
मुनि-पट-भूषन-भाजन आनी । आगे धरि बोली मृदुबानी ॥
नृपहिं प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा । सील सनेह न छाँड़िहि भीरा ॥
सुकृत सुजसु परलोक नसाऊ । तुमहिं जान बन कहिहि न काऊ ॥
अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि-सिख सुनिसुख पावा ॥
भूपहि बचन बान सम लागे । करहिं न प्रान पयान[२] अभागे ॥
लोग बिकल, मुरछित नरनाहू । काह करिअ, कछु सूझ न काहू ॥
रामु तुरत मुनिबेषु बनाई । चले जनक जननी सिरु नाई ॥

दो०—सजि बन-साजु-समाजु सब, बनिता[३]-बंधु-समेत ।
बंदि-बिप्र-गुरु-चरन प्रभु, चले करि सबहि अचेत ॥८०॥

निकसि बसिष्ठ द्वार भये ठाड़े । देखे लोग बिरह-दव[४] दाढ़े[५] ॥
कहि प्रिय बचन सकल समुझाए । बिप्रवृन्द रघुबीर बोलाए ॥
गुर सन कहि बरषासन[६] दीन्हे । आदर दान बिनयबस कीन्हे ॥
जाचक दान मान संतोषे । मीत पुनीत प्रेम परितोषे ॥
दासी दास बोलाइ बहोरी । गुरहिं सौंपि बोले कर जोरी ॥
सबकै सार-सँभार गोसाईं । करबि जनक-जननी की नाईं[७] ॥
बारहिं बार जोरि जुगपानी[८] । कहत रामु सब सन मृदुबानी ॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी । जेहि तें रहै भुआल सुखारी ॥

दोहा—मातु सकल मोरे बिरह जेहि न होहिं दुख दीन ।
सोइ उपाय तुम्ह करेहु सब पुरजन[९] परम प्रबीन ॥८१॥

एहि बिधि राम सबहिं समुझावा। गुरु-पद-पदुम[१०] हरषि सिरु नावा ॥
गनपति[११] गौरि गिरीसु[१२] मनाई। चले असीस पाइ रघुराई ॥

---

१ क्रोधित हो कर २ (प्रयाण) गवन ३ स्त्री ४ वियोग की आग ५ जले हुए ६ ( बरस + असन ) एक वर्ष का भोजन ७ भाँति ८ ( युग पाणि ) ९ नगर-वासी १० पद्मरूपी पद, गुरु के पद-पद्म ११ गणेश जी १२ महादेव ।

रामु चलत अति भयेउ बिषादू । सुनि न जाइ पुर आरतनादू[1] ॥
कुसगुन लंक,अवध अति सोकू । हरष बिषाद[2] बिबस सुरलोकू ॥
गइ मुरछा तब भूपति जागे । बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे ॥
रामु चले बन प्रान न जाहीं[3] । केहि सुख लागि रहत तन माहीं ॥
एहि तें कवन ब्यथा बलवाना । जो दुखु पाइ तजिहि तनु प्राना ॥
पुनि धरि धीर कहै नरनाहू । लै रथ संग सखा तुम्ह जाहू ॥

दो०—सुठि[4] सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता सुकुमारि ।
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरहुगए दिन चारि ॥८२॥

जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई । सत्यसंध[5] दृढ़ब्रत रघुराई ॥
तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी । फेरिअ प्रभु मिथलेस-किसोरी ॥
जब सिय कानन देखि डेराई । कहेहु मोर सिख अवसरु पाई ॥
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू । पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू ॥
पितुगृह कबहुँ, कबहुँ ससुरारी । रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी ॥
एहि बिधि करेउ उपाय कदंबा[6] । फिरइ त होइ प्रान अवलंबा ॥
नाहिं त मोर मरनु परिनामा । कछु न बसाइ भए बिधि बामा ॥
अस कहि मुरुछि परा महि राऊ। राम लषनु सिय आनि देखाऊ ॥

दो०—पाइ रजायसु नाइ सिरु, रथु अति बेग बनाइ ।
गयेउ जहाँ बाहर नगर, सीयसहित दोउ भाइ ॥८३॥

तब सुमंत नृपबचन सुनाए । करि बिनती रथ रामु चढ़ाए ॥
चढ़ि रथ सीयसहित दोउ भाई । चले हृदय अवधहि सिरु नाई ॥
चलत राम लखि अवध अनाथा । बिकल लोग सब लागे साथा ॥
कृपासिंधु बहु बिधि समुझावहिं । फिरहिं प्रेमबस पुनि फिरि आँवहिं

१ करुणा पूर्ण शब्द २ विषाद, अयोध्या की दशा देखकर और हर्ष अपने शत्रु राक्षसों के नष्ट होने की आशा से । ३ प्रबल कारण होने पर भी कार्य न हो (विशेषोक्ति अलंकार) ४ सुष्ठु, सुन्दर ५ सच्ची प्रतिज्ञा करने वाले ६ समूह, अनेक ।

लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति[१] अँधियारी॥
घोर[२] जंतुसम पुर-नर नर नारी। डरपहिं एकहिं एक निहारी॥
घर मसान[३] परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता॥
बागन्ह बिटप[४] बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोबर देखि न जाहीं॥

दो०—हय[५] गय[६] कोटिन्ह केलिमृग[७] पुरपसु चातक मोर।
पिक[८] रथांग[९] सुक सारिका, सारस हंस चकोर॥ ८४॥

राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े॥
नगरु सकल बनु गहबर[१०] भारी। खग मृग बिपुल सकल नरनारी॥
बिधि कैकेइ किरातिनि कीन्हीं। जेहिं दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्हीं॥
सहि न सकै रघु-बर-बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी॥
सबहि बिचारु कीन्ह मन माहीं। राम लषन सिय बिनु सुखु नाहीं॥
जहाँ राम तहँ सबुइ[११] समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥
चले साथ अस मंत्र दृढ़ाई। सुरदुर्लभ[१२] सुखसदन बिहाई॥
राम-चरन-पंकज प्रिय जिन्हहीं। बिषय भोगबस करहिं कि तिन्हहीं॥

दो०—बालक बृद्ध बिहाइ गृह, लगे लोग सब साथ।
तमसा-तीर निवासु किय, प्रथम दिवसु रघुनाथ॥८५॥

रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी। सदय हृदय दुखु भयेउ बिसेखी॥
करुनामय रघुनाथ गोसाईं। बेगि पाइअहि पीर पराई[१३]॥
कहि सप्रेम मृदुबचन सुहाए। बहु बिधि राम लोग समुझाए॥
किए धरम-उपदेस घनेरे[१४]। लोग प्रेम बस फिरहिं न फेरे॥
सील सनेह छाँड़ि नहिं जाई। असमंजस[१५] बस भे रघुराई॥

---

१ महाप्रलय की रात्रि २ भयानक ३ (स्मशान) मरघट ४ वृक्ष ५ घोड़ा ६ हाथी ७ खेलने के हरणि ८ कोयल ९ चकवा, चकवी १० घना ११ सर्व १२ देवता भी कष्ट से जिनको पावें १३ दूसरे के दुख को देखते ही दया आजाती है। १४ बहुत १५ द्विविधा में।

※ साभिप्राय विशेषण होने से परिकरालंकार।

लोग सोग-स्रम-बस[1] गए सोई । कछुक देव माया मति मोई[2] ॥
जबहिं जामजुग जामिनि[3] बीती । रामु सचिव सन कहेउ सप्रीती ॥
खोज मारि[4] रथ हाँकहु ताता । आन उपाय बनिहि नहिं बाता ॥
दो०—रामु लषन सिय जानु[5] चढ़ि, संभु चरन सिरु नाइ ।
सचिव चलायउ तुरथ रथु इत उत खोज दुराइ ॥८६॥
जागे सकल लोग भए भोरू । गे रघुनाथ भयेउ अति सोरू ॥
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं । 'रामराम' कहि चहुँदिसि धावहिं[6] ॥
मनहुँ बारिनिधि[7] बूड़ जहाजू । भयेउ बिकल बड़ बनिक-समाजू ।
एकहिं एक देहिं उपदेसू । तजे राम हम जानि कलेसू ॥
निन्दहिं आपु, सराहहिं मीना । धिग[8] जीवनु रघुबीर-बिहीना ॥
जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा । तौ कस मरनु न माँगे दीन्हा ॥
एहि बिधि करत प्रलाप कलापा[9] । आए अवध भरे परितापा[10] ॥
बिषमबियोगु न जाइ बखाना । अवधिआस सब राखहिं प्राना ॥
दो०—राम दरस-हित नेम ब्रत, लगे करन नरनारि ।
मनहुँ कोक-कोकी कमल, दीन बिहीन तमारि[11] ॥८७॥
सीता-सचिव-सहित दोउ भाई । सृङ्गबेरपुर पहुँचे जाई ॥
उतरे राम देवसरि[12] देखी । कीन्ह दंडवत हरखु[13] बिसेखी ।
लषन सचिव सिय किएप्रनामा । सबहिं सहित सुख पायेउ रामा ॥
गंग सकल-मुद-मंगल-मूला । सब सुखकरनि, हरनि सब सूला ॥
कहि कहि कोटिक कथाप्रसंगा । रामु बिलोकहिं गंगतरंगा ॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई । बिबुध-नदी-महिमा अधिकाई ॥
मज्जनु कीन्ह पंथस्रम गयेऊ । सुचिजलुपिअत मुदितमनभयेऊ ।
सुमिरत जाहि मिटै भवभारू[14] । तेहिस्रम, यह लौकिक व्यवहारू ॥

१ दुःख और थकावट से २ मोहली थी ३ दोपहर रात्रि ४ खोज छिप कर ५ रथ ६ दौड़ते हैं ७ समुद्र ८ ( धिक् ) धिक्कार ९ तरह तरह की कल्पना करते हुए । १० दुख ११ सूर्य १२ गंगाजी १३ ( हर्ष ) प्रसन्नता १४ आवागमन का दुःख ।

दो०—सुद्ध सच्चिदानन्द[१] मय, कंद[२] भानु-कुल-केतु ।
चरित करत नर अनुहरत[३], संसृति-सागर-सेतु[४] ॥८८॥
यह सुधि गुह[५] निषाद जब पाई । मुदित लिए प्रिय बंधु बुलाई ॥
लिए फल मूल भेंट भरि भारा । मिलन चलेउ हियहरषु अपारा ॥
करि दंडवत भेंट धरि आगें । प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागें ॥
सहज-सनेह-बिबस रघुराई । पूँछी कुसल निकट बैठाई ॥
नाथ कुसल पदपंकज देखें । भयेउँ भाग-भाजन जन लेखें[६] ॥
देव धरनि-धनु-धाम तुम्हारा । मैं जनु नीचु सहित परिवारा ॥
कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ । थापिअ जनु[७] सबु लोगु सिहाऊ ।
कहेहु सत्य सब सखा सुजाना । मोहि दीन्ह पितु आयसु आना ॥
दो०—बरष चारिदस बासु बन, मुनि-व्रत-बेषु अहारु ।
ग्रामबास नहिं उचित सुनि, गुहहि भयेउ दुखभारु ॥८९॥
राम-लषन-सिय-रूप निहारी । कहहिं सप्रेम ग्राम-नर-नारी ॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे । जिन्ह पठए बन बालक ऐसे ॥
एक कहहिं भल भूपति कीन्हा । लोचन-लाहु[८] हमहिं बिधि दीन्हा ॥
तब निषादपति उर अनुमाना । तरु सिंसुपा[९] मनोहर जाना ॥
लै रघुनाथहि ठाउँ देखावा । कहेउ राम सब भाँति सुहावा ॥
पुरजन करि जोहारु घर आए । रघुबर संध्या करन सिधाए ॥
गुह सवाँरि साथरी डसाई[१०] । कुस-किसलय-मय मृदुल सोहाई ॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी । दोना भरि भरि राखेसि आनी ॥
दो०—सिय सुमंत भ्राता सहित, कंद मूल फल खाइ ।
सयन कीन्ह-रघु-बंस मनि, पाय पलोटत[११] भाइ ॥९०॥

---

१ (सत् + चित् + आनन्द) सत्य + चैतन्य + आनन्द २ जड़, संसार जिससे पैदा हुआ है ३ आदमियों की भाँति ४ संसार सागर के पुल ५ भीलों के राजा का नाम ६ अर्थात् भक्तजनों में हुआ ७ सेवक की जड़ जमादेना ८ नेत्रों का लाभ ९ शीशम १० बिछाया ११ दबाते हैं ।

उठे लषन प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहि सोवन मृदुबानी ॥
कछुक दूरि सजि बानसरासन। जागन लगे बैठि बीरासन ॥
गुह बोलाइ पाहरू-प्रतीती[1]। ठाँव ठाँव राखे अति प्रीती ॥
आपु लषन पहिं बैठेउ जाई। कटि[2] भाथी[3] सरचाप चढ़ाई ॥
सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयेउ प्रेमबस हृदय बिषादू ॥
तनु पुलकित जलु लोचन बहई। बचन सप्रेम लषन सन कहई ॥
भूपति भवन सुभाय सुहावा। सुर-पति-सदनु न पटतर[4] पावा ॥
मनि-मय-रचित चारु[5] चौबारे। जनु रतिपति[6] निज हाथ सँवारे ॥

दो०—सुचि सुबिचित्र सु-भोग-मय, सुमन सुगंध सुबास।
पलंग मंजु मनिदीप जहँ, सब बिधि सकल सुपास ॥९१॥

बिबिध बसन उपधान[7] तुराई। छीरफेन[8] मृदु बिसद सुहाई ॥
तहँ सियरामु सयन निसि करहीं। निज छबि-रति-मनोज-मदु हरहीं ॥
ते सिय रामु साथरी सोए। स्रमित बसन बिनु जाहिं न जोए ॥
मातु पिता परिजन पुरबासी। सखा सुसील दास अरु दासी ॥
जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ राम गोसाईं ॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेससखा[9] रघुराऊ ॥
रामचंदु पति सो बैदेही। सोवति महि, बिधि बामनकेही ॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करम प्रधान सत्य कह लोगू ॥

दो०—केकयनंदिन[10] मंदमति, कठिन कुटिलपनु कीन्ह।
जेहि रघुनंदन जानकिहिं, सुखअवसर दुख दीन्ह ॥९२॥

भइ-दिन कर-कुल बिटप कुठारी*। कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी ॥
भयेउ बिषाद निषादहि भारी। रामसीय-महि-सयन निहारी ॥

---

१ विश्वासपात्र पहरुआ २ कमर ३ तरकस ४ समता ५ सुन्दर ६ कामदेव ७ तकिया ८ (दूध के फेन समान) उज्ज्वल और कोमल ९ इन्द्र का मित्र १० राजा केकय की पुत्री।

*दिनकर कुल-विटप, रूपक कर्म०; दिनकर-कुल-विटप-कुठारी, सम्प्रदान।

बोले लषन मधुर मृदु-बानी । ग्यान बिराग-भगति-रस सानी ॥
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता । निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥
जोग[1] वियोग[2] भोग भल मंदा[3] । हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ॥
जनमु मरनु जहँ लगि जग-जालू । संपति बिपति करम अरु कालू ॥
धरनि धामु धनु पुर परिबारू । सरगु[4] नरकु जहँ लगि व्यवहारू ॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं । मोह-मूल[5] परमारथ[6] नाहीं ॥

दो०—सपने होइ भिखारि नृप, रंकु नाकपति[7] होइ ।
जागे लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंच[8] जिय जोइ ॥९३॥

अस बिचारि नहिं कीजिअ रोषू । काहुहि बादि न देइय दोषू ॥
मोहनिसा[9] सबु सोवनिहारा । देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥
एहि जग-जामिनि जागहि जोगी । परमारथी प्रपंच-बियोगी[10] ॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा । जबसब बिषय-बिलास-बिरागा[11]
होइ बिबेकु मोहभ्रम भागा । तब रघुनाथ चरन अनुरागा ॥
सखा परम परमारथु एहू । मन-क्रम बचन रामपद नेहू ॥
राम ब्रह्म परमारथरूपा । अविगत[12], अलख[13], अनादि[14], अनूपा[15]
सकल-बिकार-रहित[16] गतभेदा[17] । कहि नित नेति[18] निरूपहिं[19] बेदा

दो०—भगत भूमि भूसुर[20] सुरभि[21], सुर हित लागि कृपाल ।
करत चरित धरि मनुज तन, सुनत मिटहिं जगजाल ॥९४॥

---

१ मिलना २ जुदाई ३ बुरा ४ स्वर्ग ५ ( मोह है मूल में जिसके ) मायाजाल बहुव्रीहि ६ परम तत्त्व, माया के बखेड़ों से परे, शास्त्रीय ज्ञान वा सत्यज्ञान, मोक्ष ७ इन्द्र (नाक + स्वर्ग) ८ माया ९ अज्ञानरूपी रात्रि १० माया से रहित ११ भोग विलासों से छूट जाय । १२ जिसकी गति न जानीजाय १३ (अलक्ष्य) जो देखा न जाय । १४ आरम्भ रहित १५ जिसकी उपमा न हो १६ विकार हीन—(१) जन्म (२) वृद्धि (३) विवर्ण (४) क्षीण (५) जरा (६) मरण १७ समदर्शी—छोटा बड़ा न समझने वाला १८ ( न + इति) अन्त रहित १९ कहते हैं २० ब्राह्मण २१ गाय ।

सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय-रघुबीर-चरन रत[1] होहू॥
कहत रामगुन भा भिनुसारा[2]। जागे जग मंगल-दातारा[3]॥
सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बटछीर मँगावा॥
अनुज सहित सिर जटा बनाए। देखि सुमंत्र नयनजल छाए॥
हृदय दाहु अति बदन मलीना। कह कर जोरि बचन अति दीना[4]॥
नाथ कहेउ अस कौसल नाथा। लै रथ जाहु राम के साथा॥
बन देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई॥
लखनु रामु सिय आनेहु फेरी। संसय सकल सँकोच निबेरी[5]॥

दो०—नृप अस कहेउ गोसाइँ, जस कहैं करौं बलि सोइ।
करि बिनती पायन्ह परेउ, दीन्ह बाल जिमि रोइ॥९५॥

तात कृपा कर कीजिअ सोई। जातें अवध अनाथ न होई॥
मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा[6]। तात धरममतु तुम्ह सब सोधा[7]॥
सिबि दधीच हरिचंद नरेसा। सहे धरमहित कोटि कलेसा॥
*रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरम धरेउ सहि संकट नाना॥

---

१ प्रेम, भक्ति करो २ प्रातः काल ३ संसार को आनन्द देने वाले ४ नम्र ५ दूर करके ६ समझाया ७ मनन किया है।

*चन्द्रवंशी राजा सत्कृति के पुत्र रंतिदेव बड़े धर्मात्मा और वैभव सम्पन्न राजा थे। उन्होंने कुछ दिन सकुटुम्ब जंगल में वास किया। एक दिन ४८ दिन के कठिन उपवास के पश्चात् पंच-महायज्ञ करके भोजनों पर बैठना ही चाहते थे कि एक अतिथि आगया; उसे भोजन कराया। तब दूसरा अतिथि आया। इस प्रकार ४ अतिथि आये। राजा ने भोजन कराकर उनको प्रसन्न किया। अब उसके पास बहुत थोड़ा भोजन रह गया था। जैसे ही भोजन करने बैठा, एक अतिथि और आ पहुँचा। राजा ने शेष भोजन उसको दे दिया। आप बिना ही भोजन किये रह गया। राजा के इस भाव पर ईश्वर बड़े प्रसन्न हुए। उसने ईश्वर से यह वरदान माँगा "मैं दूसरे के दुःख को न देख सकूँ, चाहे स्वयं दुःख उठालूँ।"

धरमु न दूसर सत्यसमाना। आगम निगम पुरान बखाना॥
मैं सोइ धरमु सुलभ[1] करि पावा। तजे तिहूँपुर अपजसु छावा॥
संभावित[2] कहँ अपजसलाहू। मरन-कोटि सम दारुनदाहू[3]॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ। दिएँ उतर फिर पातकु लहऊँ॥
दो०—पितु पद गहि कहि कोटि नति[4] बिनय करब कर जोरि।
चिंता कवनिहुँ बात कै तात करिय जनि मोरि॥९६॥
तुम्ह पुनि पितुसम अतिहित मोरें। बिनती करौं तात कर जोरें॥
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारे। दुख न पाव पितु सोच हमारे॥
सुनि रघुनाथ सचिव-संबादू। भयेउ सपरिजन[5] बिकल निषादू॥
पुनि कछु लषन कही कटु बानी। प्रभु बरजे[6] बड़ अनुचित जानी॥
सकुचि राम निज सपथ देवाई। लषन सँदेसु कहिअ जनि जाई॥
कह सुमंत्र पुनि भूप-सँदेसू[7]। सहि न सकहिं सिय बिपिन[8] कलेसू॥
जेहि बिधि अवध आव फिरिसीया। सोइ रघुबरहिं तुम्हहिं करनीया॥
नतरु निपट अवलंब-बिहीना[9]। मैं न जिअब जिमिजलबिनु मीना॥
दो० – मइकें[10] सुसरें सकल सुख, जबहिं जहाँ मनु मान।
तहँ तब रहिहि सुखेन सिय, जब लगि बिपति-बिहान[11]॥९७॥
बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती। आरति प्रीति न सो कहि जाती॥
पितु-संदेसु सुनि कृपानिधाना। सियहिदीन्हिसिखकोटिबिधाना[12]॥
सासु ससुर गुर प्रिय परिवारू। फिरहु त सब कर मिटै खभारू[13]॥
सुनि पति बचन कहति बैदेही। सुनहु प्रानपति परम सनेही॥
प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहत छाँह किमि छेंकी[14]॥
प्रभा[15] जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चंद्रिका[16] चंदु तजि जाई॥
पतिहिं प्रेममय बिनय सुनाई। कहति सचिव सन गिरा[17] सुहाई॥

---

१ आसान २ प्रतिष्ठित पुरुष ३ कठिन दुखदाई ४ प्रणाम ५ कुटुम्ब सहित ६ रोक दिये ७ समाचार ८ जंगल ९ बिना सहारे १० पिता के घर ११ दुख दूर होने १२ करोड़ों तरह की १३ दुःख १४ छोड़कर १५ धूप १६ चाँदनी १७ वाणी।

तुम्ह पितु-ससुर-सरिस हित-कारी। उतरु देउँ फिरि अनुचित भारी ॥
दोहा—आरति[1]-बस सनमुख भइउँ, बिलगु[2] न मानव तात ।
आरज-सुत[3]-पद-कमल बिनु, बादि जहाँ लगि नात॥९८॥
पितु-वैभव-बिलासु[4] मैं दीठा[5] । नृप-मनि मुकुट[6] मिलत पदपीठा[7]॥
सुख निधान अस पितु-गृह मोरें। पिय-बिहोन[8] मन भाव न भोरें ॥
ससुर चक्कवइ[9] कोसल राऊ । भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
आगे होइ जेहि सुरपति लेई । अरध सिंघासन आसन देई ॥
ससुरु एतादृस[10] अवध निवासू । प्रिय परिवारु मातु-सम सासू ॥
बिनु रघुपति-पद-पदुम-परागा । मोहि कोउ सपनेहु सुखद न लागा॥
अगम पंथ बन भूमि पहारा । करि केहरि सर सरित अपारा ॥
कोल किरात कुरंग[11] बिहंगा[12] । मोहि सब सुखद प्रानपति संगा ॥
दोहा—सासु ससुर सन मोरि-हुति[13] बिनय करबि परि पाय ।
मोरि सोचु जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभाय ॥९९॥
प्रान-नाथ प्रिय देवर साथ । बीर धुरीन[14] धरे धनु भाथा ।
नहिं मग-स्रमु भ्रमु-दुख मन मोरे ।मोहि लगि सोच करिअ जनि भोरे[15]
सुनि सुमंत्र सिय सीतल-बानी ।भयेउ बिकल जनु फनि[16] मनिहानी[17]
नयन सूझि नहिं सुनइ न काना ।कहि न सकइ कछु अति अकुलाना॥
रामु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती । तदपि होत नहिं सीतल छाती ॥
जतन[18] अनेक साथहित[19] कीन्हे । उचित उतर रघुनन्दन दीन्हे ॥
मेटि जाइ नहिं रामरजाई[20] । कठिन करमगति कछु न बसाई ॥
राम-लखन-सिय पद सिरु नाई।फिरेउ बनिकु जिमिमूर[21] गँवाई॥

---

१ दुखी होकर २ बुरा ३ (आर्य्य) श्वसुर के पुत्र, पति ४ आनन्द ५ देखा है ६ मणियों से बने हुए राजाओं के मुकुट ७ पैरों पर ८ रहित ९ चक्रवर्ती १० ऐसे ११ हरिण १२ पक्षी १३ मेरी ओर से १४ मुखिया १५ भूल कर भी १६ सर्प १७ मणि खोने पर १८ यत्न १९ संग के लिये २० रामाज्ञा २१ मूल धन, पूँजी ।

दोहा०—रथ हाँकेउ, हय[1] रामतन, हेरि-हेरि[2] हिहिंनाहिं ।
देखि निषाद बिषादबस, धुनहिं सीस पछिताहिं ॥१००॥

जासु बियोग[3] बिकल पसु ऐसे । प्रजा मातु पितु जीवहिं कैसे ॥
बरबस[4] राम सुमंत्रु पठाए । सुरसरि तीर आप तब आए ॥
माँगी नाव न केवट आना[5] । कहै तुम्हार मरमु मैं जाना ॥
चरन-कमल-रज कहँ सबु कहई । मानुषकरनि मूरि[6] कछु अहई ॥
छुअत सिला[7] भइ नारि सुहाई । पाहन तें न काठ कठिनाई ॥
तरनिउँ मुनिघरनी होइ जाई । बाट परे[8] मोरि नाव उड़ाई ॥
एहि प्रतिपालउँ सबु परिबारू । नहिं जानौं कछु अउर कबारू[9] ॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू । मोहि पदपदुम पषारन[10] कहहू ॥

छंद—पदकमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं ।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साँची कहौं ॥
बरु तीर मारहु लषन पै जब लगि न पायँ पखारिहौं ।
तब लगि न तुलसीदास-नाथ कृपालु पारु उतारिहौं ॥

सो०—सुनि केवट के बयन, प्रेम लपेटे अटपटे[11] ।
बिहँसे करुना अयन, चितै जानकी लषन तन ॥१०१॥

कृपासिंधु बोले मुसुकाई । सोइ करु जेहि तव नाव न जाई ॥
बेगि आनु जल पाय पखारू । होत बिलम्ब उतारहि पारू ॥
जासु नाम सुमिरत एक बारा । उतरहिं नर भवसिंधु अपारा ॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा । जेहि जगु किए तिहुँ पगहुँ ते थोरा ॥
पदनख निरखि देवसरि हरषी । सुनि प्रभु बचन मोह मति करषी[12] ॥
केवट रामरजयासु पावा । पानि कठवता[13] भरि लेइ आवा ॥

---

१ घोड़ा २ देखकर ३ जुदाई ४ बलात्, ज़बरदस्ती ५ मल्लाह नहीं लाया ६ औषध ७ पत्थर ८ जीविका की राह मारी जाय, मैं लुट जाऊँगा ९ कारोबार १० कमलरूपी चरण धोने की आज्ञा दीजिये ११ अटपट १२ हर लिया १३ काठ का वर्त्तन विशेष।

अति आनंद उमगि अनुरागा। चरनसरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्य पुंज[1] कोउ नाहीं॥

दो०—पद पखारि जलु पान करि, आपु सहित परिवार।
पितर[2] पारु करि प्रभुहिं पुनि, मुदित गयेउ लेइ पार॥१०२॥

उतरि ठाढ़ भए सुरसरिरेता। सीय रामु गुह लषन समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥
पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनिमुँदरी मन-मुदित उतारी॥
कहेउ कृपालु लेहु उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई॥
नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष-दुख-दारिद-दावा॥
बहुत काल मैं कीन्ह मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी[3]॥
अब कछु नाथ न चाहिय मोरें। दीन दयाल अनुग्रह तोरें॥
फिरती बार मोहि जो देवा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेवा॥

दो०—बहुत कीन्ह प्रभु लषन सिय नहिं कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ॥१०३॥

तब मज्जनु करि रघुकुल नाथा। पूजि पारथिव[4] नाएउ माथा॥
सिय सुरसरिहिं कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी॥
पति-देवर-सँग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहि पूजा तोरी॥
सुनि सियबिनय प्रेम-रस-सानी। भइ तब बिमल बारि बरबानी[5]॥
सुनि रघु-बीर-प्रिया बैदेही। तब प्रभाव जग बिदित न केही॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरें। तोहि सेवहिं सब बिधि कर जोरें॥
तुम्ह जो हमहिं बड़ि बिनय सुनाई। कृपा कीन्ह मोहि दीन्हि बड़ाई॥
तदपि देवि मैं देवि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा[6]॥

दो०—प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला[7] आइ।
पूजहि[8] सब मन कामना सुजसु रहिहि जग छाइ॥१०४॥

---

१ पुण्य का समूह २ पूर्वज ३ पूरी पूरी ४ मिट्टी के बने महादेव ५ पवित्रजल से श्रेष्ठ वाणी ६ वाणी ७ अयोध्या ८ पूरी हो।

गंग बचन सुनि मंगलमूला । मुदित सीय सुरसरि अनुकूला ॥
तब प्रभु गुहहिं कहेउ घर जाहू । सुनत सूख मुख भा उर दाहू ॥
दीन बचन गुह कह कर जोरी । बिनय सुनहु रघु-कुल मनि[1] मोरी॥
नाथ साथ रहि पंथु देखाई । करि दिन चारि चरन सेवकाई॥
जेहि बन जाइ रहब रघुराई । परनकुटी[2] मैं करबि सुहाई ॥
तब मोहि कहँ जसि देब रजाई । सोइ करिहौं रघु-बीर-दोहाई ॥
सहज सनेह[3] राम लखि तासू । संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू ॥
पुनि गुह ग्याति बोलि सब लीन्हे। करि परितोष बिदा तब कीन्हे ॥

दो०—तब गनपति सिब सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ ।
सखा-अनुज-सिय-सहित बन गवन[4] कीन्ह रघुनाथ॥१०५॥

तेहि दिन भयेउ बिटप तर बासू । लषन सखा सब कीन्ह सुपासू॥
प्रात प्रातकृत[5] करि रघुराई ॥ तीरथराजु दीख प्रभु जाई ॥
*सचिव[6] सत्य श्रद्धा[7] प्रिय नारी। माधव[8] सरिस मीतु[9] हितकारी[10]।
चारि पदारथ भरा भँडारू[11] । पुन्य प्रदेस देस अति चारू ॥
छेत्रु अगम गढ़[12] गाढ़[13] सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह[14] पावा ॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा । कलुष-अनीक-दलन[15] रनधीरा ॥
संगमु-सिंहासन सुठि सोहा । छत्रु अषयबट[16] मुनिमनु मोहा ।
चँवर जमुन अरु गंग तरंगा । देखि होहिं दुख दारिद भंगा ॥

दो०—सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मन काम ।
बंदी बेद-पुरान-गन कहहिं बिमल गुन ग्राम[17]। १०६॥

---

१ रघुकुल में मणि सदृश द्युति वाले हैं जो २ पत्तों की झोंपड़ी ३ असाधारण प्रेम ४ कूच ५ प्रातःकाल की शौच, संध्या वंदन इत्यादि *स्वामी, अमात्य, सुहृद, कोष, राज्य, दुर्ग और बल ये सात राज्य चिन्ह हैं ६ मंत्री ७ ईश्वरपर दृढ़ विश्वास ८ वेणी माधव ९ मित्र १० हितैषी ११ कोष १२ किला १३ मज़बूत १४ बैरी १५ पाप की सेना के नष्ट करने वाले १६ अक्षयवट का पेड़ १७ गुणों का समूह ।

को कहि सकै प्रयाग प्रभाऊ । कलुष-पुंज-कुंजर-मृग-राऊ[१] ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा । सुखसागर रघुबर सुख पावा ॥
कहि सिय लषनहि सखहि[२] सुनाई । श्रीमुख[३] तीरथ-राज-बड़ाई ॥
करि प्रनाम देखत बन बागा । कहत महातम[४] अति अनुरागा ॥
एहि बिधि आइ त्रिलोकी बेनी[५] । सुमिरत सकल सुमंगल-देनी ॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिवसेवा । पूजि जथाबिधि तीरथदेवा[६] ॥
तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए । करत दंडवत मुनि उर लाए ॥
मुनि-मन-मोद न कछु कहि जाई । ब्रह्मानन्दरासि[७] जनु पाई ॥

दो०—दीन्हि असीस, मुनीस उर, अति अनंदु अस जानि ।
लोचनगोचर[८] सुकृतफल[९], मनहुँ किए बिधि आनि ॥१०७॥

कुसल प्रस्न करि आसन दीन्हे । पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे ॥
कंद मूल फल अंकुर नीके । दिए आनि मुनि मनहुँ अमीके[१०] ॥
सीय-लषन-जन-सहित सुहाए । अति रुचि राम मूल फल खाए ॥
भए बिगतस्रम[११] राम सुखारे । भरद्वाज मृदु बचन उचारे ॥
आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू । आजु सुफल जपु जोग बिरागू ॥
सफल सकलसुभ साधन-साजू[१२] । राम तुमहिं अवलोकत आजू ॥
लाभ-अवधिसुभ-अवधि[१३] न दूजी । तुम्हरें दरस आस सब पूजी ॥
अब करि कृपा देहु बर एहू । निज-पद-सरसिज सहज सनेहू ॥

दो०—करम बचन मन छाँड़ि छल जब लगि जनु न तुम्हार ।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं, किए कोटि उपचार[१४] ॥१०८॥

---

१ पापों के समूह रूप हाथी के लिये सिंह समान ( रूपकालंकार ) २ निषादराज ३ अपने मुँह से ४ (महात्म्य) फल ५ त्रिवेणी ६ तीर्थराज के देवता ७ ब्रह्मानन्द का ढेर ८ आँखों के सामने ९ पुण्य का फल १० अमृत के ११ स्वस्थ १२ सम्पूर्ण शुभ साधनों का सामान १३ संपूर्ण लाभों की सीमा, परमानन्द की सीमा १४ तदवीर, इलाज ।

सुनि मुनिबचन रामु सकुचाने । भाव भगति आनंद अघाने[१] ॥
तब रघुबर मुनि सुजस सुहावा । कोटि भाँति कहि सबहि सुनावा॥
सो बड़ सो सब गुन-गन-गेहू । जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू ॥
मुनि रघुबीर परस्पर नवहीं । बचन-अगोचर सुख[२] अनुभवहीं॥
एह सुधि पाइ प्रयागनिवासी । बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी ॥
भरद्वाज आस्रम सब आए । देखन दसरथ-सुअन सुहाए ॥
राम प्रनाम कीन्ह सब काहू । मुदित भए लहि लोचनलाहू ॥
देहिं असीस परम सुखु पाई । फिरे सराहत सुन्दरताई ॥

दो०—राम कीन्ह बिस्राम निसि, प्रात प्रयाग नहाइ ।
चले सहित सिय लषन जनु, मुदित मुनिहिं सिरुनाइ॥ १०६॥

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं[३] । नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं॥
मुनि मन बिहँसि राम सन कहहीं । सुगम सकल मग तुम्ह कहँ अहहीं॥
साथ लागि मुनि सिष्य बोलाए । सुनि मन मुदित पचासक[४] आए॥
सबन्हि राम पर प्रेम अपारा । सकल कहहिं 'मगु दीख हमारा'॥
मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे । जिन्ह बहुजनम सुकृत सब कीन्हे॥
करि प्रनामु रिषि आयसु पाई । प्रमुदित[५] हृदय चले रघुराई ॥
ग्राम निकट जब निकसहिं जाई । देखहिं दरसु नारिनर धाई[६] ॥
होहिं सनाथ जनमफल पाई । फिरहिं दुखित मनु संग पठाई[७] ॥

दो०— बिदा किए बटु बिनय करि, फिरे पाइ मन काम[८] ।
उतरि नहाए जमुनजल, जो सरीरसम स्याम ॥११०॥

सुनत तीरबासी नरनारी । धाए निज निज काज बिसारी[९] ॥
लषन-राम-सिय-सुन्दरताई । देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई ॥
अति लालसा[१०] सबहि मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं ॥

---

१ भक्ति-भाव और आनन्द में परिपूरित २ अकथनीय सुख ३ से ४ पचास के लगभग ५ प्रसन्न ६ दौड़कर ७ मोहित होकर ८ अभिलाषा ९ छोड़कर १० इच्छा ।

जे तिन्ह महुँ बयबिरध सयाने । तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने ॥
सकलकथा तिन्ह सबहिं सुनाई । बनहि चले पितुआयसु पाई ॥
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं । रानी राय कीन्ह भल नाहीं ॥
तेहि अवसर एकु तापस आवा । तेजपुंज लघुबयस सुहावा ॥
कबि-अलषित[1] गति बेष बिरागी । मन-क्रम-बचन राम अनुरागी ॥

दो०—सजल नयन तन पुलकि, निज इष्टदेव पहिचानि ।
परेउ दंड जिमि धरनि तल[2], दसा न जाइ बखानि ॥१११॥

राम सप्रेम पुलकि उर लावा । परम रंक जनु पारस पावा ॥
मनहुँ प्रेम परमारथ दोऊ । मिलत धरें तन कह सब कोऊ ॥
बहुरि लषन पायन्ह सोइ लागा । लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा ॥
पुनि सिय-चरन-धूरि-धर सीसा । जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा
कीन्ह निषाद दंडवत तेही । मिलेउ मुदित लखि रामसनेही ॥
पिअत नयनपुट[3] रूप-पियूखा[4] । मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा ॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे । जिन्ह पठए बन बालक ऐसे ॥
राम लषन-सिय रूप निहारी । होहिं सनेह बिकल नरनारी ॥

दो०—तब रघुबीर अनेक बिधि, सखहि सिखावन दीन्ह ।
रामरजायसु सीस धरि, भवन गवनु तेइ कीन्ह ॥११२॥

पुनि सिय राम लषन कर जोरी । जमुनहिं कीन्ह प्रनामु बहोरी ॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई । रबितनुजा[5] कै करत बड़ाई ॥
पथिक अनेक मिलहिं मग जाता । कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता ॥
राजलषन सब अंग तुम्हारे । देखि सोचु अति हृदय हमारे ॥
मारग चलेहु पयादेहिं पाएँ । ज्योतिषु झूठ हमारेहि भाएँ[6] ॥
अगमु पंथ गिरि कानन भारी । तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी ॥
करि केहरि बन जाइ न जोई[7] । हम सँग चलहिं जो आयसु[8] होई ॥

---

१ जो दिखाई न दे २ पृथ्वी पर ३ नेत्ररूप दोना भरके ४ अमृत ५ जमुनाजी ६ विचार ७ विचार से देखने में डर लगता है ८ आज्ञा ।

जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुम्हहिं सिरु नाई॥
दो०—एहि बिधि पूँछहिं प्रेम बस, पुलकगात जलु नैन।
कृपासिन्धु फेरहिं तिन्हहिं, कहि बिनीत मृदु बैन॥११३॥
जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं। तिन्हहिं नाग-सुर-नगर सिहाहीं॥
केहि सुकृती केहि घरी बसाए। धन्य पुन्यमय परम सुहाए॥
जहँ जहँ रामचरन चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावति नाहीं॥
पुन्यपुंज मग निकट निवासी। तिन्हहिं सराहहिं सुर-पुर-बासी॥
जे भरि नयन बिलोकहिं रामहिं। सीता-लषन-सहित घनस्यामहिं॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं[1]। तिन्हहिं देव-सर-सरित सराहहिं॥
जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई। करहि कलपतरु तासु बड़ाई॥
परसि राम-पद-पदुम-परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा॥
दो०—छाँह करहिं घन बिबुधगन, बरषहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरि बन बिहँग मृग, रामु चले मग जाहिं॥११४॥
सीता लखन-सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई॥
सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृह-काज बिसारी॥
राम-लषन-सिय-रूप निहारी। पाइ नयनफलु होहिं सुखारी॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भए मगन देखि दोउ बीरा॥
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्हि सुर-मनि-ढेरी[2]
एकन्हि एक बोलि सिख देही। लोचन-लाहु लेहु छन एही॥
रामहिं देखि एक अनुरागे[3]। चितवत चले जाहिं संग लागे॥
एक नयनमगु छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बरबानी॥
दो०—एक देखि बटछाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गवाँइअ[4] छिनुक श्रम, गवनब अबहि कि प्रात। ११५॥
एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइअ[5] नाथ कहहिं मृदु बानी॥

---

१ स्नान करते हैं २ कौस्तुभ-मणियों का ढेर ३ प्रेम में भर गये
४ दूर कीजिये ५ आचमन कीजिये, पीजिये।

सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी। राम कृपालु सुसील बिसेखी ॥
जानी स्रमित सीय मन माँहीं। घरिक बिलंबु कीन्ह बटछाँही ॥
मुदित नारिनर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मन लोभा ॥
एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचन्द्र-मुख चंद चकोरा ॥
तरुन तमाल-बरन तनु सोहा। देखत कोटि-मदन-मनु मोहा ॥
दामिनि-बरन[1] लषनु सुठि नीके। नखसिख सुभग[2] भावते जी के ॥
मुनिपट कटिन्ह कसे तूनीरा। सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा ॥

दो०—जटा मुकुट सीसनि सुभग, उर भुज नयन बिसाल।
सरद-परब-बिधु-बदन[3] बर लसत स्वेद कन-जाल[4] ॥११६॥

बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत, थोरि मति मोरी ॥
राम-लषन-सिय-सुन्दरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई ॥
थके नारि नर प्रेम पिआसे। मनहुँ मृगी मृग देखि दिआसे ॥
सीयसमीप ग्राम तिय जाहीं। पूँछत अतिसनेह सकुचाहीं ॥
बार बार सब लागहिं पाएँ। कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएँ ॥
राजकुमारि बिनय हम करहीं। तिय सुभाय कछु पूँछत डरहीं ॥
स्वामिनि अबिनय[5] छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गँवारी ॥
राजकुँअर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लहि दुति मरकत सोने ॥

दो०—स्यामल गौर किसोर बर, सुन्दर सुखमा-अयन[6]।
सरद-सर्वरी-नाथ-मुख, सरदसरोरुह नयन[7] ॥११७॥

कोटि-मनोज-लजावनिहारे[8]। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय, मन महुँ मुसकानी ॥
तिनहिं बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी[9] ॥

---

१ बिजली का सा रंग २ सुन्दर ३ शरदऋतु की पूर्णमा के चन्द्र सदृश उज्ज्वल बदन ४ पसीने की बूंदों का समूह ५ ढीठता ६ सुन्दरता का घर ७ शरद ऋतु में फूले हुए कमल के समान सुंदर नेत्र ८ करोड़ों कामदेवों को लज्जित करने वाले ९ सुन्दर रंग वाली।

सकुचि सप्रेम बाल मृग-नयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी[१] ॥
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लषनु लघुदेवर मोरे ॥
बहुरि बदनबिधु अंचल[२] ढाँकी। पियतन चितै भौंह करि बाँकी ॥
खंजन[३] मंजु तिरीछे नैननि। निजपतिकहेउतिन्हहिंसियसैननि[४] ॥
भईं मुदित सबु ग्रामबधूटीं। रँकन्ह रायरासि जनु लूटीं ॥

दो०—अतिसप्रेम सिय पाँय परि, बहु बिधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह, जबलगि महि अहिसीस ॥११८॥

पारबतीसम पतिप्रिय होहू। देबि न हम पर छाँड़ब छोहू ॥
पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी। जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी ॥
दरसनु देब जानि निज दासी। लखी सीय सब प्रेमपिआसी[५] ॥
मधुरबचन कहि कहि परतोषीं। जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषीं ॥
तबहिं लषन रघुबररुख जानी। पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदुबानी ॥
सुनत नारिनर भए दुखारी। पुलकित गात, बिलोचन बारी ॥
मिटा मोद, मन भए मलीने। बिधि निधि[६] दीन्हिलेत जनुछीने ॥
समुझि करमगति धीरजु कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा ॥

दो०—लषन-जानकी-सहित तब, गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि, लिए लाइ मन साथ ॥११९॥

फिरत नारिनर अति पछिताहीं। दैवहि दोषु देहिं मन माहीं ॥
सहित बिषाद परस्पर कहहीं। बिधिकरतब उलटे सब अहहीं ॥
निपट[७] निरंकुस[८] निठुर[९] निसंकू[१०]। जेहिससि कीन्ह सरुज[११] सकलंकू ॥
रूखकलप-तरु, सागरु खारा। तेहि पठए बन राजकुमारा ॥
जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोगबिलासू ॥
ए बिचरहिं मगु बिनु पदत्राना[१२]। रचे बादि बिधि बाहन नाना ॥

---

१ कोयल की सी भाषा बोलने वाली २ वस्त्र ३ खंजन पक्षी के समान नेत्र ४ इशारे में ५ प्रेम चाहने वाली ६ कोश, खजाना ७ बिल्कुल ८ ढीठ ९ निष्ठुर, कठोर १० निडर ११ रोगी १२ जूता।

ए महि परहिं डासि कुसपाता। सुभग सेज[1] कत सृजत बिधाता॥
तरु-बर-बास इन्हहिं बिधि दीन्हा। धवलधाम रचि रचिस्रमु कीन्हा॥
दो०—जो ए मुनि-पट-धरि[2] जटिल[3], सुन्दर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन, बादि किए करतार॥१२०॥
जौं ए कन्द मूल फल खाँहीं। बादि सुधादि असन[4] जग माँहीं॥
एक कहहिं ए सहज सुहाए। आप प्रकट भए बिधि न बनाए॥
जहँ लगि बेद कही बिधि करनी। स्रवन नयन मन गोचर[5] बरनी॥
देखहु खोजि भुवन दसचारी। कहँ अस पुरुष, कहाँ अस नारी॥
इन्हहिं देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर[6] जोग बनावइ लागा॥
कीन्ह बहुत स्रम एक न आए। तेहि इरिषा[7] बन आनि दुराए॥
एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहिं परम धन्य करि मानहिं॥
ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं[8] जिन्ह देखे॥
दो०—एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय, लेहिं नयन भरि नीर॥
किमि चलिहहिं मारग अगम, सुठि सुकुमार सरीर॥१२१॥
नारि सनेह बिकल बस होहीं। चकई साँझ समय जनु सोहीं॥
मृदु-पद-कमल-कठिन मगु जानी। गहबरि हृदय[9] कहै बर बानी॥
परसत मृदुल चरन अरुनारे[10]। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे॥
जौं जगदीस इन्हहिं बनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा॥
जौं माँगा पाइअ बिधि पाहीं। ए रखिअहि सखि आँखिन्ह माहीं॥
जे नरनारि न अवसर आए। तिन्ह सिय रामु न देखन पाए॥
सुनि सुरूप बूझहिं अकुलाई। अब लगि गए कहाँ लगि, भाई॥
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई। प्रमुदित फिरहिं जनमफलु पाई॥
दो०—अबला बालक बृद्धजन कर मीजहिं पछिताहिं।
होहिं प्रेम बस लोग इमि, रामु जहाँ जहँ जाहिं॥१२२॥

१ सुन्दर सैया २ मुनियों के समान वस्त्रधारी ३ जो जटा रखाये हों ४ भोजन ५ प्रत्यक्ष ६ बराबर का ७ जलन ८ देखेंगे ९ गद्गद् हृदय १० लाल।

गाँव गाँव अस होइ अनन्दू । देखि भानु-कुल-कैरव चंदू[१] ॥
जे कछु समाचार सुनि पावहिं । ते नृपरानिहिं दोषु लगावहिं ॥
कहहिं एक अति भल नरनाहू । दीन्ह हमहिं जेइ लोचनलाहू ॥
कहहिं परसपर लोग लोगाईं । बातें सरल सनेह सुहाईं ॥
ते पित, मातु धन्य जिन्ह जाए । धन्य सो नगर जहाँ तें आए ॥
धन्य सो देसु सैलु[२] बन गाऊँ । जहँ जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ ॥
सुख पायेउ बिरंचि रचि तेही । ए जेहि के सब भाँति सनेही ॥
राम-लषन-पथि[३] कथा सुहाई । रही सकल मग-कानन छाई ॥
दो० – एहि बिधि रघु-कुल-कमल रबि. मग लोगन्ह सुख देत ।
जाहिं चले देखत बिपिन, सिय-सौमित्र-समेत ॥१२३॥
आगें रामु लषन बने पाछें । तापसबेष बिराजत काछें ॥
उभय[४] बीच सिय सोहति कैसें । ब्रह्म-जीव-बिच माया जैसें ॥
बहुरि कहौं छबि जसि मन बसई । जनु मधु-मदन मध्य[५] रतिलसई ॥
उपमा बहुरि कहौं जिअ जोही । जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही ॥
प्रभु-पद-रेख बीच बिच सीता । धरति चरन मग चलत सभीता ॥
सीय-राम-पद अंक[६] बराएँ । लषन चलहिं मगु दाहिन बाएँ ॥
राम-लषन-सिय प्रीति सुहाई । बचन अगोचर, किमि कहि जाई ॥
खग मृग मगन देखि छबि होहीं । लिए चोरि चित राम-बटोहीं[८] ॥
दो०—जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सियसमेत दोउ भाइ ।
भव-मगु-अगमु अनंदु तेइ, बिनु स्रम रहे सिराइ[९] ॥१२४॥
अजहुँ जासु उर सपनेहु काऊ । बसहिं लषन-सिय-राम बटाऊ[१०] ॥
राम-धाम-पथ[११] पाइहि सोई । जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई ॥

---

१ सूर्यकुल रूपी कुमोदिनी को चन्द्रमा के समान प्रसन्न करने वाले २ (शैल) पर्वत ३ राहगीर, बटोही ४ दोनों ५ वसन्त और कामदेव के बीच में ६ अंक = चिन्ह ८ रास्तागीर ९ पार होगये १० बटोही ११ स्वर्ग का रास्ता ।

तब रघुबीर स्रमित सिय जानी । देखि निकट बटु सीतल पानी ॥
तहँ बसि कंद मूल फल खाई । प्रात नहाइ चले रघुराई ॥
देखत बन सर सैल सुहाए । बालमीकि आस्रम प्रभु आए ॥
रामु दीख मुनिबास सुहावन । सुंदर गिरि काननु जलु पावन ॥
सरनि सरोज बिटप बन फूले । गुंजत मंजु मधुप[1] रस भूले ॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं । बिरहित[2] बैर मुदित मन चरहीं ॥

दो०—सुचि सुंदर आस्रमु निरखि[3], हरषे राजिबनैन[4] ।
सुनि रघुबर आगमनु, मुनि, आगे आयेउ लैन ॥१२५॥

मुनि कहँ राम दंडवत[5] कीन्हा । आसिरबादु बिप्रवर दीन्हा ॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने[6] । करि सनमानु आस्रमहिं आने ॥
मुनिवर अतिथि प्रानप्रिय पाए । कंद मूल फल मधुर मँगाए ॥
सिय सौमित्र राम फल खाए । तब मुनि आसन दिए सुहाए ॥
बालमीकि मन आनँद भारी । मंगल मूरति नयन निहारी ॥
तब कर कमल जोरि रघुराई । बोले बचन स्रवन-सुख-दाई[7] ॥
तुम्ह त्रिकाल-दरसी मुनि नाथा । बिस्व बदर[8] जिमि तुम्हरें हाथा ॥
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी । जेहि जेहि भाँति दीन्ह बन रानी ॥

दो०—तात बचन पुनि मातु हित, भाइ भरत अस राव ।
मो कहँ दरस तुम्हार प्रभु, सबु मम पुन्य प्रभाव ॥१२६॥

देखि पाँय मुनिराय तुम्हारे । भए सुकृत सब सुफल हमारे ॥
अब जहँ राउर आयसु होई । मुनि उदबेग[9] न पावै कोई ॥
मुनि तापस[10] जिन्ह तें दुख लहहीं । ते नरेस बिनु पावक दहहीं ॥
मंगल-मूल बिप्र परितोषू । दहै कोटि कुल भू-सुर-रोषू ॥
अस जिय जानि कहिअ सोइ ठाऊँ । सिय-सौमित्र-सहित जहँ जाऊँ ॥

---

१ भौंरा २ बिना ३ देखकर ४ कमल के फूल के सदृश नेत्र वाले (बहु०) ५ प्रणाम ६ शीतल हुए ७ कानों को सुख देने वाले ८ बेर ९ कष्ट १० तपस्वी ।

तहँ रचि रुचिर परन तृन-साला[१] । बास करौं कछु काल कृपाला ॥
सहज सरल सुनि रघुबरबानी । साधु साधु बोले मुनि ग्यानी ॥
कस न कहहु अस रघु कुल केतू । तुम्ह पालक सन्तत स्रुति सेतू[२] ॥
छं०—स्रुत-सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी ।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपाविधान की ॥
जो सहससीसु अहीसु महि-धरु[३] लषन स-चराचर धनी ।
सुरकाज धरि नरराज तनु चले दलन[४] खल निसिचर अनी[५] ॥
सो०—राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर ।
अवगति[६] अकथ[७] अपार नेति नेति नित निगम कह ॥ १२७ ॥
जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे । बिधि-हरि-संभु नचावनि हारे ॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा । अउरु तुम्हहिं को जाननि हारा ॥
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई । जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई ॥
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनंदन । जानहि भगत भगत-उर-चंदन ॥
चिदानन्दमय[८] देह तुम्हारी । बिगतबिकार जान अधिकारी ॥
नरतनु धरहु संत-सुर-काजा । कहहु करहु जस प्राकृत राजा ॥
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे । जड़ मोहहिं बुध होह सुखारे ॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा । जस काछिअ तस चाहिअ नाँचा ॥
दो०—पूछेहु मोहि कि रहौं कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहि दिखावौं ठाउँ ॥ १२८ ॥
सुनि मुनि बचन प्रेमरस-साने । सकुचि राम मनमहुँ मुसुकाने ॥
बालमीकि हँसि कहहि बहोरी । बानी मधुर अमिअ-रस बोरी ॥
सुनहु राम अब कहौं निकेता । जहाँ बसहु सिय-लषन-समेता ॥
जिन्ह के स्रवन समुद्र समाना । कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ।

---

१ पत्ते और तिनकों का घर २ हमेशा वेद की मर्यादा पालने वाले हो ३ सहस्र हैं सिर जिसके ऐसा सर्पों का राजा, पृथ्वी का धरने वाला ४ नष्ट करने को ५ दुष्ट निशाचरों की सेना ६ बुद्धि से न जानी जाय ७ जो कहा न जाय ८ सर्वदा आनन्द में रहने वाला ।

भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्हके हिय तुम्ह कहँ गृह रूरे[1]॥
लोचन चातक चिन्ह करि राखे। रहहिं दरसजलधर अभिलाषे[2]॥
निदरहिं सरित सिन्धु सर भारी। रूपबिंदु-जल[3] होहिं सुखारी॥
तिन्ह के हृदयसदन सुखदायक। बसहु बंधु-सिय-सह रघुनायक॥

दो०—जस तुम्हार मानस बिमल हंसिन जीहा[4] जासु।
मुकुताहल[5] गुनगन चुनै राम बसुहु हिय तासु॥१२९॥

प्रभु प्रसाद[6] सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहै नित नासा[7]॥
तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। प्रभुप्रसाद पट[8] भूषन धरहीं॥
सीस नवहिं सुर-गुरु-द्विज देखी। प्रीतिसहित करि बिनय बिसेखी॥
कर नित करहिं रामपद-पूजा। रामभरोस हृदय नहिं दूजा॥
मंत्रराजु[9] नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जिवाँइ[10] देहिं बहु दाना॥
तुम्हतें अधिक गुरहिं जिअजानी। सकल भाय सेवहि सनमानी॥

दो०—सबु करि माँगहि एक फलु राम-चरन रति होउ।
तिन्हके मनमन्दिर बसहु सिय रघुनन्दन दोउ॥१३०॥

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह के कपट दम्भ नहिं माया। तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया॥
सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख-सुख-सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्यप्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहि छाँडि गति दूसर नाहीं। राम बसहु तिन्हके मन माहीं॥
जननीसम जानहिं पर नारी। धनु पराव बिषतें बिष भारी॥
जे हरषहि परसम्पति देखी। दुखित होहिं परबिपति बिसेखी॥

---

१ उत्तम २ दर्शन रूप बादलों की आशा ३ सुन्दरता रूपी जल की बूँद ४ जीभ (जिह्वा) ५ मोती ६ आपकी कृपा ७ नाक ८ रेशमी वस्त्र ९ महामन्त्र।

जिन्हहिं राम तुम प्रान पियारे। तिन्ह के मन सुभसदन तुम्हारे॥
दो०—स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्हके सब तुम्ह तात।
मनमंदिर तिन्हके बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥१३१॥
अबगुन तजि सबके गुन गहहीं। बिप्र-धेनु-हित संकट[1] सहहीं॥
नीतिनिपुन जिन्हकइ जग लीका[2]। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥
गुन तुम्हार समुझै निज दोसा। जेहि सबभाँति तुम्हार भरोसा॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥
जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन-सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहिं रहै लउ लाई[3]। तेहि के हृदय रहहु रघुराई॥
सरगु नरकु अपवरगु[4] समाना। जहँ तहँ देख धरे धनुबाना॥
करम-बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा॥
दो०—जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेहु ॥१३२॥
एहि बिधि मुनिबर भवन देखाए। बचन सप्रेम राममन भाए॥
कह मुनि सुनहु भानु-कुल-नायक। आस्रमु कहौं समय-सुखदायक॥
चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू[5]॥
सैल-सुहावन[6] कानन चारू। करि-केहरि-मृगबिहँग बिहारू[7]॥
नदी पुनीत[8] पुरान बखानी। अत्रिप्रिया*निज तप-बल आनी॥
सुरसरिधार नाउँ मन्दाकिनि। जो सब-पातक-पोतक-डाकिनि॥
अत्रि आदि मुनि-बर बहु बसहीं। करहि जोग जप तप तन कसहीं॥
चलहु सफलस्रम[9] सब कर करहू। राम देहु गौरव[10] गिरि बरहू॥

---

१ कष्ट २ गणना ३ लौ लगाकर ४ मोक्ष ५ आराम, सुभीता ६ सुन्दर पर्वत ७ विहार करते हैं, विचरते हैं ८ पवित्र ९ मेहनत १० बड़ाई।

*महर्षि अत्रि की पतिव्रता स्त्री अनुसूआ (दक्ष की पुत्री) तप के प्रभाव से गंगाजी की धार मंदाकिनी को वृद्ध पति के स्नानार्थ यहाँ लाईं, कि उनको कष्ट न हो।

दो०—चित्र-कूट-महिमा अमित कही महामुनि गाइ ।
आइ नहाए सरित बर सिय समेत दोउ भाइ ॥१३३॥
रघुबर कहेउ लषन भल घाटू । करहु कतहु अब ठाहर ठाटू[1] ॥
लषनु दीख पय[2] उतर करारा । चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमिनारा[3]
*नदी पनच[4] सर सम दम[5] दाना । सकल कलुष कलिसाउज[6] नाना ।
चित्रकूट जनु अचल[7] अहेरी[8] । चुकै न घात मार मुठभेरी[9] ॥
अस कहि लषन ठाँव देखरावा । थल बिलोकि रघुबर सुख पावा ॥
रमेउ[10] राममनु देवन्ह जाना । चले सहित सुरपति परधाना ॥
कोल-किरात-बेष सब आये । रचे परन-तृन-सदन सुहाए ॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला । एक ललित लघु एक बिसाला ॥
दो०—लषन-जानकी-सहित प्रभु, राजत रुचिर निकेत[11] ।
सोह मदन[12] मुनिवेष जनु, रति-रितुराज-समेत[13] ॥१३४॥
अमर नाग किन्नर दिसि पाला । चित्रकूट आए तेहि काला ॥
राम प्रनामु कीन्ह सब काऊ । मुदित देव लहि लोचन लाहू ॥
बरषि सुमन कह देव-समाजू । नाथ सनाथ भए हम आजू ॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाए । हरषित निज निज सदन सिधाए ॥
चित्रकूट रघुनन्दनु छाए[14] । समाचार सुनि सुनि मुनि आए ॥
आवत देखि मुदित मुनिबृन्दा । कीन्ह दंडवत रघु-कुल-चन्दा[15] ॥
मुनि रघुबरहिं लाइ उर लेहीं । सुफल[16] होन हित आसिष देहीं

---

१ ठहरने का प्रबन्ध २ जल ३ पयस्विनी नदी ४ प्रत्यंचा ५ समता, इन्द्रियों का जीतना ६ कलियुग के पाप निशाना हैं ७ अटल ८ शिकारी ९ मुक़ाबिलेमें १० मन लग जाना ११ सुन्दर घर १२ कामदेव १३ रति और बसन्त ऋतु सहित १४ बस गये १५ रघुकुल में श्रेष्ठ १६ अपने वचन सत्य होने को ।

*नदी उस धनुषरूपी नाले (पयस्विनी नदी) की प्रत्यंचा है, सम, दम, दान बाण हैं, भाँति भाँति के कलियुग के सम्पूर्ण पाप लक्ष्य हैं ।

सिय-सौमित्र राम छबि देखहिं । साधन[१] सकल सफल कर लेखहिं

दो०—जथाजोग सनमानि प्रभु, बिदा किए मुनिबृंद[२] ।
करहिं जोग जग जाग[३] तप, निज आस्रमनि सुछंद[४] ॥१३५॥

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई । हरषे जनु नवनिधि घर आई ॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना । चले रंक जनु लूटन सोना ॥
तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता । अपर[५] तिन्हहिं पूछहिं मगु जाता॥
कहत सुनत रघुबीर निकाई[६] । आइ सबन्हि देखे रघुराई ।
करहिं जोहारु भेंट धरि आगे । प्रभुहिं बिलोकहिं अति अनुरागे॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े । पुलक सरीर, नयन जल बाढ़े ॥
राम सनेह-मगन सब जाने । कहि प्रिय बचन सकल सनमाने॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी । बचन बिनीत कहहिं कर जोरी ॥

दो०—अब हम नाथ सनाथ सब, भए देखि प्रभुपाय ।
भाग हमारे आगमनु, राउर कोसलराय ॥१३६॥

धन्य भूमि बन पंथ पहारा । जहँ जहँ नाथ पाउ तुम धारा ॥
धन्य बिहँग[७] मृग काननचारी । सफल जनम भए तुम्हहिं निहारी॥
हम सब धन्य सहित परिवारा । दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा ॥
कीन्ह बासु-भल ठाउँ बिचारी । इहाँ सकल रितु रहब सुखारी ॥
हम सब भाँति करबि सेवकाई । करि केहरि अहि बाघ बराई[८] ॥
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा । सब हमार प्रभु पग पग जोहा[९] ॥
जहँ तहँ तुमहिं अहेर[१०] खेलाउब । सर निरझर[११] भल ठाउँ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता । नाथ न सकुचब आयसु देता ॥

दो० – बेदबचन मुनिमन-अगम, ते प्रभु करुनाअयन ।
बचन किरातन्ह के सुनत, जिमि पितु बालक-बयन । १३७॥

---

१ उपाय २ मुनियों का समूह ३ जग्ग (यज्ञ) ४ स्वतंत्र ५ दूसरे ६ सुन्दरता ७ पक्षी ८ बचाकर ९ देखा हुआ १० शिकार ११ झरना ।

रामहिं केवल प्रेमु पियारा। जानिलेउ जो जाननिहारा।
राम सकल-बन-चर[1] तब तोषे[2]। कहि मृदु बचन प्रेम परितोषे॥
बिदा किए सिरु नाइ सिधाए। प्रभुगुन कहत सुनत घर आए॥
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन-सुर-मुनि-सुखदाई॥
जब तें आइ रहे रघुनायकु। तब तें भएउ बनु मंगल दायकु[3]॥
फूलहिं फलहिं बिटप[4] बिधि नाना। मंजु-बलित-बर-बेलि-बिताना[5]॥
सुर-तरु-सरिस सुभाय सुहाए। मनहुँ बिबुध-बन[6] परिहरि आए॥
गुंज मंजुतर मधुकर स्रेनी[7]। त्रिबिध बयारि बहै सुखदेनी॥

दो०—नीलकंठ कलकंठ[8] सुक, चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहँग, स्रवनसुखद चितचोर॥१३८॥

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगत-बैर[9] बिचरहिं सब संगा॥
फिरत अहेर रामछबि देखी। होहिं मुदित मृगवृन्द बिसेखी॥
बिबुध बिपिन जहँ लगि जग माहीं। देखि रामबनु सकल सिहाहीं॥
सुरसरि सरसइ दिनकर-कन्या। मेकलसुता[10] गोदावरि धन्या॥
सब सर सिंधु नदी नद नाना। मंदाकिनि कर करहिं बखाना॥
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू। मंदर मेरु सकल-सुर-बासू॥
सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट-जसु गावहिं तेते॥
बिंधि[11] मुदित मन सुख न समाई। स्रम बिनु बिपुल[12] बड़ाई पाई॥

दो०—चित्रकूट के बिहँग मृग, बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्यपुंज सब धन्य अस, कहहिं देव दिन राति॥१३९॥

नयनवंत रघुबरहिं बिलोकी। पाइ जनम-फल होहिं बिसोकी[13]॥
परसि चरनरज अचर[14] सुखारी। भए परमपद[15] के अधिकारी॥

---

१ बनवासी २ संतुष्ट किया ३ मंगल देने वाले ४ वृक्ष ५ बेलों के चंदोवे ६ देवताओं के वन ७ भौंराओं की पाँति ८ कोयल ९ प्रेम से १० नर्मदा ११ विन्ध्याचल पर्वत १२ बहुत १३ शोकरहित १४ स्थावर १५ मोक्ष।

सो बनु-सैल सुभाय सुहावन । मंगलमय अति-पावन-पावन[१] ॥
महिमा कहिअ कवनिबिधि तासू । सुखसागर[२] जहँ कीन्हनिवासू ॥
†पयपयोधि तजि अवध बिहाई । जहँ सिय-लषनु-राम रहे आई ॥
कहि न सकहिं सुषमा[३] जसकानन । जौं सत सहस होहिसहसानन[४] ॥
सो मैं बरनि कहौं बिधि केही । डाबरकमठ[५] कि मंदर लेही ॥
सेवहिं लषनु करम-मन-बानी । जाइ न सीलु सनेह बखानी ॥

दो०—छिनु छिनु लखि सिय-राम-पद, जानि आपु पर नेह ।
करत न सपनेहुँ लषनु चितु, बंधु-मातु पितु-गेहु ॥१४०॥

रामसंग सिय रहति सुखारी । पुर-परिजन-गृह-सुरति[६] बिसारी[७] ॥
छिनु छिनु पिय-बिधु-बदनु निहारी । प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी ॥
नाह-नेहु[८] नित बढ़त बिलोकी । हरषितु रहति दिवस जिमि कोकी ॥
सियमनु रामचरन अनुरागा । अवध सहस-सम बन प्रियलागा ॥
परनकुटी[९] प्रिय प्रियतम संगा । प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा ॥
सासु-ससुर सम मुनितिय मुनिवर । असन अमिय सम कंदमूल फर ॥
नाथ-साथ साथरी सुहाई । मयन-सयन-सत-सम[१०] सुखदाई ॥
लोकप[११] होहिं बिलोकत जासू । तेहि कि मोहि सक बिषय-बिलासू ॥

दो०—सुमिरत रामहिं तजहिं जन, तृन सम बिषय बिलासु ।
रामप्रिया जग-जननि सिय. कछु न आचरजु तासु ॥१४१॥

सीय लषनु जेहि बिधि सुखु लहहीं । सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं ॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी । सुनहिं लषनु सिय अति सुखु मानी ॥

---

१ अत्यन्त पवित्रसे भी पवित्र २ सुखके समुद्र ३ सुन्दरता ४ हज़ार हैं मुख जिसके (शेषनाग) ५ पोखर का कछुआ ६ स्मृति ७ छोड़दी ८ पति-प्रेम ९ झोंपड़ी १० सैकड़ों कामदेव के सदृश ११ दिग्पाल ।

† प्रलयकाल में भगवान् क्षीर सागर में शेष जी की शैया पर तैरा करते हैं, लक्ष्मी पैर दवाया करती हैं । अत्याचार के समय क्षीर सागर छोड़ जन्म लेकर पृथ्वी का भार उतारते हैं ।

सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत-सनेहु-सीलु-सेवकाई॥
कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी। धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी॥
लखि सियलषनु बिकल होइजाहीं। जिमि पुरुषहिं अनुसर[1] परिछाहीं॥
प्रिया-बंधु-गति लखि रघुनंदन। धीर कृपाल भगत-उर-चंदनु[2]॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता[3]। सुनि सुखु लहहिं लषनु अरुसीता॥

दो०—राम-लषन सीता-सहित, सोहत परन निकेत।
जिमिबासव[4] बस अमरपुर, सची-जयंत समेत॥१४२॥

जोगवहिं प्रभु सिय लषनहिं कैसें। पलक बिलोचन गोलक जैसें॥
सेवहिं लषन सीय रघुबीरहिं। जिमि अबिबेकी[5] पुरुष सरीरहिं॥
एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग-मृग-सुर-तापस-हितकारी॥
कहेउँ राम-बन-गवनु सुहावा। सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा॥
फिरेहु निषादु प्रभुहि पहुँचाई। सचिव सहित रथ देखेसि आई॥
मंत्री बिकल बिलोकि निषादू। कहि न जाइ जस भयेउ बिषादू॥
'राम राम सिय लखन' पुकारी। परेउ धरनितल ब्याकुल भारी॥
देखि दखिन दिसि[6] हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं॥

दो०—नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचनबारि।
ब्याकुल भयेउ निषाद सब, रघु-बर-बाजि निहारि॥१४३॥

धरि धीरजु तब कहै निषादू। अब सुमंत्र परिहरहु बिषादू॥
तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता[7]। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता[8]॥
बिबिध कथा कहि कहि मृदु बानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी॥
सोकसिथिल रथु सकै न हाँकी। रघु-बर-बिरह-पीर उर बाँकी[9]॥
चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बनमृग[10] मनहुँ आनि रथ जोरे॥

---

१ अनुसरण करती है, पीछे पीछे चलती है २ भक्तों के हृदय को चन्दन रूप ३ पवित्र ४ इन्द्र ५ अज्ञानी ६ दक्षिण दिशा ७ ज्ञानतत्त्व का जानने वाला ८ उलटा देव ९ बड़ी भारी १० जंगली हिरन।

अड़ुकि परहिं[१] फिरि हेरहिं पीछे। रामबियोग बिकल दुख तीछे[२] ॥
जो कह रामु लषनु बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही ॥
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। बिनुमनिफनिक[३] बिकलजेहिभाँती ॥

दो०—भयेउ निषादु बिषादबस, देखत सचिव-तुरंग[४] ।
बोलि सुसेवक चारि तब, दिए सारथी संग ॥१४४॥

गुह सारथिहि फिरे पहुँचाई। बिरह बिषाद बरनि नहिं जाई ॥
चले अवध लेइ रथहि निषादा। होहिं छनहि छन मगन बिषादा[५] ॥
सोच सुमंत्र बिकल दुखदीना। धिग जीवन रघु-बीर बिहीना ॥
रहहि न अंतहु अधमु[६] सरीरू। जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू ॥
भए अजस-अघ-भाजन[७] प्राना। कवन हेतु नहिं करत पयाना[८] ॥
अहह मंद मनु अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका ॥
मीँजि हाथ सिरु धुनि पछिताई। मनहुँ कृपिन[९] धनरासि गवाँई[१०] ॥
बिरद बाँधि बर बीरु कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई ॥

दो०—बिप्र बिबेकी बेदबिद[११], संमत साधु सुजाति ।
जिमि धोखे मदपान कर सचिव सोच तेहि भाँति ॥१४५॥

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता[१२] करम-मन बानी ॥
रहै करमबस परिहरि नाहू[१३]। सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू ॥
लोचन सजल, डीठि[१४] भइ थोरी। सुनै न स्रवन बिकल मति भोरी ॥
सूखहिं अधर लागि मुँह लाठी[१५]। जिउ न जाइ उर अवधिकपाटी[१६] ॥
बिबरन भयेउ न जाय निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी ॥

---

१ अड़ जाते हैं २ तीक्ष्ण ३ साँप ४ मंत्री और घोड़े ५ शोक में डूबे हुए ६ नीच ७ बुराई और पापों से भरे हुए पात्र ८ कूच ९ लोभी १० खोकर ११ वेद का ज्ञाता १२ पति ही जिसका देवता हो १३ स्वामी १४ दृष्टि १५ मुँह सूख जाना या चिपकना १६ सीमारूप क्िवाड़ होने से अर्थात् १४ वर्ष तक ।

हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी । जम-पुर-पंथ सोच जिमि पापी॥
बचन न आव हृदय पछिताई । अवध काह मैं देखब जाई ॥
राम रहित रथ देखिहि जोई । सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई ॥

दोहा—धाइ पूँछिहहिं मोहि जब, बिकल नगर नरनारि ।
उतरु देब मैं सबहि तब, हृदय बज्रु बैठारि ॥१४६॥

पुछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिन्हहिं बिधाता ॥
पूँछिहि जबहिं लषन-महतारी । कहिहहूँ कवन संदेस सुखारी ॥
रामजननि जब आइहि धाई । सुमिरि बच्छु[1] जिमि धेनुलवाई[2] ॥
पूँछत उतर देब मैं तेही । गे बनु राम लषन बैदेही ॥
जोइ पूँछिहि तेहि ऊतरु देबा । जाइ अवध अब एहु सुख लेबा ॥
पुँछिहहि जबहिं राउ दुख दीना। जिवनु जासु रघुनाथ अधीना ॥
देहौं उतरु कवुन मुँह लाई । आयेउँ कुसल कुअँर पहुँचाई ॥
सुनत लषन-सिय-राम सँदेसू । तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू ॥

दोहा—हृदउ न बिदरेउ पंक[3] जिमि बिछुरत प्रीतम-नीर ।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यह जातना सरीर[4] ॥१४७॥

एहि बिधि करत पंथ पछितावा। तमसा-तीर तुरत रथु आवा ॥
बिदा किए करि बिनय निषादा। फिरे पाँय परि बिकल-बिषादा ॥
पैठत[5] नगर सचिव सकुचाई । जनु मारेसि गुरु-बांभन-गाई ।
बैठि बिटपतर दिवसु गवाँवा । साँझ समय तब अवसरु पावा ॥
अवधप्रबेसु कीन्ह अँधियारें । पैठ भवन रथु राखि दुआरें ॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाये। भूप द्वार रथु देखन आये ॥
रथु पहिचानि बिकल लखि घोरे । गरहिं गात जिमि आतप[6] ओरे[7]॥
नगर-नारि-नर ब्याकुल कैसे । निघटत[8] नीर मीनगन जैसे ॥

---

१ (वत्स) बछड़ा २ नई बिआई हुई गाय ३ कीचड़ ४ यह शरीर यम दण्ड सहने को ५ घुसते समय ६ गर्मी ७ ओले ८ खतम होने पर।

दोहा—सचिव आगमनु सुनत सबु, बिकल भयेउ रनिवासु।
भवनु भयंकरु लाग तेहि, मानहुँ प्रेतनिवास[1] ॥ १४८ ॥
अति आरत सब पूछँहिं रानी। उतरु न आव बिकल भइ बानी॥
सुनै न स्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृप जेहि तेहि बूझा॥
दासिन्ह दीख सचिव-बिकलाई। कौसिल्या-गृह गईं लेवाई॥
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमियरहित जनु चंद बिराजा॥
आसन-सयन-बिभूषन-हीना। परेउ भूमि तल निपट मलीना॥
लेइ उसास सोच एहि भाँती। सुरपुरतें जनुखँसेउ[2] जजाती॥
लेत सोचभरि छिन छिन छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती†॥
राम राम कह रामसनेही। पुनि कह राम लषन बैदेही॥
दो०—देखि सचिव जयजीव कहि, कीन्हेउ दंड प्रनामु।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति कहु सुमंत्र कहँ रामु ॥१४९॥
भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई। बूड़त कछु अधार जनु पाई॥
सहित सनेह निकट बैठारी। पूछत राउ नयन भरि बारी॥
रामकुसल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथ लखनु बैदेही॥
आने फेरु कि बनहिं सिधाए। सुनत सचिव-लोचन जल छाए॥
सोच-बिकल पुनि पूँछ नरेसू। कहु सिय राम-लषन-संदेसू[3]॥

---

१ भूतों का घर २ गिर गया ३ हाल।

राजा नहुष का पुत्र राजा ययाति धर्म बल से स्वर्ग प्राप्त कर चुका था। इन्द्र ने इसको गद्दी पर बैठा कर सारे सत्कार्य इसी के मुँह से कहला लिये। अपनी प्रशंसा स्वयं करने से पुण्य कम हो गया; तब तो इन्द्र ने इनको स्वर्ग से गिरा दिया।

†कश्यप के पुत्र अरुण के सम्पाती और जटायु दो पुत्र थे इन्होंने बलाभिमान से सूर्य के निकट जाने की प्रतिज्ञा की; जब सूर्य की किरणों से पर जलने लगे तब जटायु तो लौट आया परन्तु सम्पाती न लौटा, उसके पर जल गये और व्याकुल होकर महेन्द्र पर्वत पर गिर गया।

राम–रूप–गुन–सील–सुभाऊ । सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ ॥
राज सुनाइ दीन्ह बनबासू । सुनि मन भयेउ न हरष हरासू[1] ॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना । को पापी बड़ मोहि समाना ॥

दो०—सखा रामु-सिय लषनु जहँ, तहाँ मोहि पहुँचाउ ।
नाहिं त चाहत चलन[2] अब, प्रान कहौं सति भाउ ॥१५०॥

पुनि पुनि पूँछत मंत्रिहि राऊ । प्रियतम-सुअन-सँदेस सुनाऊ ॥
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ । रामु-लषन-सिय नयन देखाऊ ॥
सचिव धीर धरि कह मृदुबानी । महाराज तुम पंडित ग्यानी ॥
बीर सुधीर धुरंधर देवा । साधु-समाज सदा तुम्ह सेवा ॥
जनम मरन सब दुख-सुख भोगा । हानि लाभ, प्रिय मिलन बियोगा ॥
काल करम सब होहिं गोसाईं । बरबस[3] राति दिवस की नाईं ॥
सुख हरषहिं जड़ दुखबिलखाहीं[4] । दोउ[5] सम धीर धरहिं मन माहीं ॥
धीरज धरहु बिबेक बिचारी । छाँड़िय सोचु सकल हितकारी ॥

दो०—प्रथम बास तमसा भयेउ, दूसर सुरसरि-तीर ।
न्हाइ रहे जलपान करि, सिय समेत दोउ बीर ॥१५१॥

केवट कीन्हि बहुत सेवकाई । सो जामिन सिंगरोर[6] गवाँई ॥
होत प्रात बटछीरु[7] मँगावा । जटामुकुट निज सीस बनावा ॥
रामसखा तब नाव मँगाई । प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई ॥
लषन बानधनु धरे बनाई । आपु चढ़े प्रभु आयुस पाई ॥
बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा । बोले मधुर बचन धरि धीरा ॥
तातु प्रनामु तात सन कहेहू । बार बार पद-पंकज गहेहू ॥
करबि पायँ परि बिनय बहोरी । तात करिअ जनि चिंता मोरी ॥
बनमग मंगल[8] कुसल हमारें । कृपा अनुग्रह[9] पुन्य तुम्हारें ॥

---

१ दुःख, शोक २ प्राण चलना चाहते हैं अर्थात् मैं मरने वाला हूँ ३ अनिवार्य ४ दुखी होते हैं ५ सुख और दुःख दोनों में ६ शृङ्गवेरपुर ७ बरगद का दूध ८ सुखदायक ९ कृपा ।

छंद—तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुख पाइहौं ।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पायँ पुनि फिर आइहौं ॥
जननी सकल परितोषि परि परि पायँ करि बिनती घनी ॥
तुलसी करहु सोइ जतन जेहि कुसली[1] रहहिं कोसलधनी ॥

सो०—गुरु सन कहब सँदेस, बार बार पद-पदुम गहि ।
करब सोइ उपदेस, जेहि न सोच मोहि अवधपति ॥१५२॥

पुरजन परिजन सकल निहोरी । तात सुनायेउ बिनती मोरी ॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी । जातें रह नर-नाह सुखारी ॥
कहब सँदेसु भरत के आए । नीति न तजिअ राजपद पाए ॥
पालेहु प्रजहि करम-मन-बानी । सेयेहु मातु सकल सम जानी ॥
अउर निबाहेहु भायप[2] भाई । करि पितु मातु सुजन-सेवकाई ॥
तात भाँति तेहि राखब राऊ । सोच मोर जेहिं करइ न काऊ ॥
लषन कहे कछु बचन कठोरा । बरजि राम पुनि मोहि निहोरा ॥
बार बार निज सपथ दिवाई । कहबि न तात लषन लरिकाई ॥

दो०—कहि प्रनामु कछु कहन लिय[3] सिय भइ सिथिल सनेह ।
थकित बचन लोचन सजल पुलक पल्लवित[4] देह ॥१५१॥

तेहि अवसर रघुबर रुख पाई । केवट पारहि नाव चलाई ॥
रघु-कुल-तिलक चले एहि भाँती । देखेउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती[5] ॥
मैं आपनु किमि कहौं कलेसू । जिअत फिरेउ लेइ राम सँदेसू ॥
असकहिसचिवबचनरहिगयेऊ[6] । हानि-गलानि-सोच-बस भयेऊ ॥
सूत-बचन सुनतहि नरनाहू । परेउ धरनि उर दारुनदाहू ॥
तलफत बिषम मोह मन मापा[7] । माँजा मनहुँ मीन कहुँ ब्यापा ॥
करि बिलाप सब रोवहिं रानी । महा बिपति किमि, जाइ बखानी ॥
सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा । धीरजहू कर धीरजु भागा ॥

---

१ प्रसन्न २ भ्रातृस्नेह ३ कहना चाहा ४ पुलकायमान, रोमाञ्चित ५ छाती कड़ी करके ६ चुप रह गया ७ व्याप्त होगया ।

दो०—भयेउ कोलाहल अवध अति, सुनि नृप राउर सोर।
बिपुल बिहँग बन[1] परेउ निसि, मानहुँ कुलिस कठोर ॥१५४॥
प्रान कंठगत[2] भयेउ भुआलू। मनिबिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू ॥
इन्द्री सकल बिकल भई भारी। जनु सर-सरसिज बनु बिनुबारी॥
कौसिल्या नृपु दीख मलाना। रबि-कुल रबि अथएउ[3] जिअजाना ॥
उर धरि धीर राम महतारी। बोली बचन समय अनुसारी ॥
नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम-बियोग पयोधि अपारू ॥
करनधार[4] तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू ॥
धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू ॥
जौं जिअ धरिअ बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी।
दो०—प्रिया बचन मृदु सुनत नृप, चितयेउ आँखि उघारि[5]।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचेउ सीतल बारि ॥१५५॥
धरि धीरजु उठि बैठि भुआलू। कहु सुमंत्र कहँ राम कृपालू ॥
कहाँ लखन कहँ रामु सनेही। कहँ प्रिय पुत्र बधू बैदेही ॥
बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ जुगसरिस सिराति[6] न राती॥
तापस-अंध-साप-सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई* ॥
भयेउ बिकल बरनत इतिहासा। रामरहित धिग जीवनआसा ॥

---

१ पक्षियों से भरे हुए वन में २ प्राण कण्ठ में आगये हैं ३ सूर्यकुल का सूर्य छिपाने वाला है ४ मल्लाह ५ खोलकर ६ खतम होती है।

*राजा ने कहा जब मैं धनुर्विद्या में प्रवीण हो चुका था; तालाब पर हाथियों के शिकार को गया। मैंने शब्द सुनकर बाण चलाया वह श्रवण के, जो अपने अन्धे मा बाप के लिये पानी भरने आया था, लगा। मैंने जैसे ही बाण निकाला वह मर गया। मैं पानी लेकर उसके मा बाप के पास आया। उन्होंने यह जानकर कि उनका पुत्र मेरे द्वारा मारा गया है, यह शाप दिया 'हमारी तरह तू भी पुत्र शोक से मरेगा'।

सो तनु राखि करबि मैं काहा। जेहि न प्रेम-पनु मोर निबाहा॥
हा रघुनंदन प्रानपिरीते। तुम्ह बिनु जियत बहुत दिन बीते॥
हा जानकी लखन, हा रघुबर। हा पितु-हित-चित-चातक-जलधर†॥
दो०—राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि[१] रघुबरबिरह, राउ गए सुरधाम॥१५६॥
जिअन-मरन-फलु दसरथ पावा। अंड[२] अनेक अमल जसु छावा॥
जिअत राम-बिधु-बदनु निहारा। रामबिरह करि मरनु सवाँरा॥
सोकबिकल सब रोवहिं रानी। रूपु सील बलु तेज बखानी॥
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमि तल बारहिं बारा॥
बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन[३] करहिं पुरबासी॥
अथएउ आजु भानु-कुल भानू। धरमअवधि गुन-रूप-निधानू॥
गारी सकल कैकइहि देहीं। नयनबिहीन[४] कीन्ह जग जेहीं॥
एहि बिधि बिलपत रैनि[५] बिहानी। आए सकल महामुनि ग्यानी॥
दो०—तब बसिष्ठ मुनि समयसम, कहि अनेक इतिहास।
सोक निवारेउ[६] सबहि कर, निज बिग्यान-प्रकास॥१५७॥
तेल नाव भरि नृपतन राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा॥
धावहु बेगि भरत पहिं जाहू। नृप-सुधि कतहुँ कहो जनि काहू॥
एतनेइ कहेउ भरत सन जाई। गुर बोलाइ पठएउ दोउ भाई॥
सुनि मुनि-आयसु धावन[७] धाए। चले बेगि बरबाज लजाए॥
अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें॥
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु[८] कोटि कलपना[९]॥
बिप्र[१०] जेवाँइ देहिं दिन दाना। सिव-अभिषेक[११] करहिं बिधिनाना॥

---

१ त्यागकर २ ब्रह्माण्ड ३ रोते हैं ४ नेत्रों से रहित अन्धा ५ रात्रि ६ दूर किया ७ दूत ८ अशुभ ९ बहम १० ब्राह्मण ११ महादेव की पूजा।

†पिता के चित्तरूप पपीहा के लिये बादल रूप (रूपकालंकार)

माँगहिं हृदय महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई॥
दो०—एहि बिधि सोचत भरत मन, धावन पहुँचे आइ।
गुरु-अनुसासन[1] स्रवन सुनि, चले गनेसु मनाइ॥१५८॥
चले समीर-बेग[2] हय हाँके। नाँघत सरित सैल बन बाँके॥
हृदय सोचु बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जिय जाउँ उड़ाई॥
एक निमेष बरषसम जाई। एहि बिधि भरत नगर नियराई॥
असगुन होंहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत[3] करारा[4]॥
खर सियार बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला॥
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगर बिसेषि भयावनु लागा॥
खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम-बियोग-कुरोग बिगोए[5]॥
नगर-नारि-नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्हि सब संपति हारी॥
दो०—पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गवँहिं[6] जोहारहिं जाहिं।
भरत कुसल पूँछि न सकहिं भय बिषाद मन माहिं॥१५६॥
हाट बाट[7] नहिं जाहिं निहारी। जनु पुर दहँ[8] दिसि लागि दवारी[9]॥
आवत सुत सुनि कैकयनंदनि। हरषी रबि कुल जलरुह-चंदनि॥
सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारहिं भेंटि भवन लेइ आई॥
भरत दुखित परिवारु निहारा। मानहुँ तुहिन[10] बनज-बनु[11] मारा॥
कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती॥
सुतहि ससोच देखि मनु मारें। पूछत नैहर कुसल हमारें॥
सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूँछी निज-कुल-कुसल भलाई॥
कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय रामु लषन प्रिय भ्राता॥
दो०—सुनि सुतबचन सनेहमय कपटनीर भरि नयन।
भरत स्रवन मन-सूल-सम पापिन बोली बयन॥१६०॥

---

१ आज्ञा २ हवा के समान तेज ३ बुरे नक्षत्र में, कुसगुन ४ काला कौआ ५ पीड़ित ६ चुपचाप चले जाते हैं ७ रास्ता ८ दशों दिशा ९ अग्नि १० पाला ११ कमलों का वन।

तात बात मैं सकल सवाँरी। भइ मंथरा सहाय बिचारी॥
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुर-पति-पुर-पगु धारेउ॥
सुनत भरत भयबिबस बिषादा। जनु सहमेउ[१] करि केहरिनादा॥
तात तात हा तात पुकारी। परे भूमितल ब्याकुल भारी॥
चलत न देखन पायेउँ तोही। तात न रामहिं सौंपेहु मोही॥
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी। कहु पितुमरन हेतु महतारी॥
सुनि सुतबचन कहत कैकेई। मरमु पाँछि[२] जनु माहुर देई॥
आदिहु तें सब आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदितमन बरनी॥

दो०—भरतहिं बिसरेउ[३] पितुमरन, सुनत राम-बन-गौनु।
हेतु अपनपउ[४] जानि जिअ. थकित रहे धरि मौनु[५]॥१६१॥

बिकल बिलोकि सुतहि समुझावत। मनहुँ जरे पर लोनु[६] लगावत॥
तात राउ नहिं सोचइ जोगू। बड़इ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू॥
जीवत सकल जनम-फल पाए। अंत अमर-पति सदन[७] सिधाए॥
अस अनुमानि सोचु परिहरहू। सहित समाज राज पुर करहू॥
सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाकें छतु[८] जनु लाग अँगारू॥
धीरजु धरि भरि लेहिं उसासा। पापिन सबहिं भाँति कुल नासा॥
जौं पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारेसि मोही॥
पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। मीनजिअन हित बारि उलीचा॥

दो०—हंसबंसु[९] दसरथु जनकु राम लखन से भाइ।
जननी तू जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ॥१६२॥

जब तैं कुमति कुमत जिअ ठयेऊ। खंड खंड होइ हृदय न गयेऊ॥
बर माँगत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह, मुँह परेउ न कीरा॥
भूप प्रतीति[१०] तोरि किमि कीन्ही। मरनकाल बिधि मति हरि लीन्ही॥

---

१ डर गया २ घाव को पोंछ कर, साफ़ करके ३ भूल गये ४ अपने आपको ५ शान्त ६ नमक ७ मरने पर स्वर्ग में गये ८ घाव ९ सूर्यवंश १० विश्वास।

बिधिहु न नारि हृदय-गति जानी। सकल-कपट-अघ-अवगुन-खानी॥
सरल सुसील धरम रत राऊ। सो किम जानै तीयसुभाऊ॥
अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रान-प्रिय नाहीं॥
भे अति अहित[1] राम तेउ तोही। को तू अहसि[2] सत्य कहु मोही॥
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई॥

दो०—राम-बिरोधी-हृदय[3] तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी[4] बादि कहौं कछु तोहि॥ १६३॥

सुनि सत्रुघन[5] मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिस, कछु न बसाई॥
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई॥
लखि रिस भरेउ लषन-लघु-भाई। बरत अनल[6] घृत आहुति पाई॥
हुमगि[7] लात तकि कूबर मारा। परि मुँह भरि महि करत पुकारा॥
कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दसन[8] मुख रुधिर प्रचारू[9]॥
आह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फलु अनइस[10] पावा॥
सुनि रिपुहन लखि नख-सिखखोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी॥
भरत दयानिधि दीन्ह छुड़ाई। कौसिल्या पहिं गे दोउ भाई॥

दो०—मलिन बसन बिबरन बिकल कृस सरीर दुखभारु।
कनक-कलप-बर-बेलि-बन[11], मानहुँ हनी तुषारु[12]॥ १६४॥

भरतहिं देखि मातु उठि धाई। मुरछित अवनिपरी झँइ आई[13]॥
देखत भरतु बिकल भए भारी। परे चरन तन दसा बिसारी॥
मात तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय रामु लषनु दोउ भाई॥
कैकई कत जननी जग माँझा। जौं जनमत भइ काहे न बाँझा॥
कुलकलंकु जेहि जनमेउ मोही। अप-जस-भाजन प्रिय-जन-द्रोही॥

---

१ अनहित २ है ३ राम का है जो विरोधी हृदय (बहु०) ४ पापी ५ शत्रुघ्न ६ अग्नि ७ जोश में आकर या उछल कर ८ टूटे हुए दाँतों से ९ मुँह से खून बहने लगा १० बुरा ११ सुवर्ण की सुन्दर कल्पलताओं को १२ पाला १३ मूर्छा।

को त्रिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी॥
पितु सुरपुर बन रघुकुल-केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥
धिग मोहि भयेउँ बेनु-बन-आगी। दुसह-दाह- दुख - दूषन - भागी॥

दो०—मातु भरत के बचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिए उठाइ लगाइ उर, लोचन मोचति बारि॥ १६५॥

सरल सुभाइ माय हिय लाए। अतिहित मनहुँ राम फिर आए॥
भेंटेउ बहुरि लखन-लघु-भाई। सोक सनेहु न हृदय समाई॥
देखि सुभाउ कहब सब कोई। राममातु अस काहे न होई॥
माता भरतु गोद बैठारे। आँसुपोंछि मृदु बचन उचारे॥
अजहुँ बच्छु, बलि धीरज धरहूँ। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल-करम गति अघटित [1]जानी॥
काहुहि दोस देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता॥
जो एतेहु दुख मोहि जिआवा। अजहु को जाने का तेहि भावा॥

दो०—पितु आयसु भूषन बषन, तात तजे रघुबीर।
बिषमउ हरष न हृदय कछु पहिरे बलकल चीर॥ १६६॥

मुखप्रसन्न मन राग न रोषू। सबकर सब बिधि करि परितोषू॥
चले बिपिन [2]सुनि सिय संग लागी। रहहिं न राम-चरन-अनुरागी
सुनतहि लषन चले उठि साथा। रहहिं न जतन किये रघुनाथा॥
तब रघुपति सबहीं सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई॥
राम लषनु सिय बनहिं सिधाए। गइउँ न संग न प्रान पठाए॥
एहु सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगे। तउ न तजा तन जीव अभागे॥
मोहि न लाज निज नेहु निहारी। राम सरिस सुत मैं महतारी॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना। मोर हृदय सत-कुलिस समाना॥

---

१ अटल जो मिट न सके २ वन।

दो० —कौसल्या के बचन सुन. भरत सहित रनिवासु।
व्याकुल बिलपत राजगृह मानहुँ सोकनिवासु ॥ १६८ ॥
बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्या लिये हृदय लगाई ॥
भाँति अनेक भरत समुझाए। कहि बिवेकमय बचन सुनाए ॥
भरतहु मातु सकल समुझाई। कहि पुरान स्रुति कथा सुहाई ॥
छलबिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी ॥
जे अघ मातु-पिता सुत मारें। गाइगोठ[1] महि सुर-पुर जारें ॥
जे अघ तिय-बालक-बध[2] कीन्हें। मीत महीपति माहुर[3] दीन्हे ॥
जे पातक उपपातक अहहीं। करम-बचन मन-भव[4] कबि कहहीं ॥
ते पातक मोहि होहु बिधाता। जौं एह होइ मोर मत माता ॥
दो०—जो परिहरि हरि-हर चरन. भजहिं भूत घन घोर।
तेहि कै गति मोह देउ बिधि, जौं जननी मत मोर ॥१६८॥
बेचहिं बेदु धरम दुहि लेहीं*। पिसुन[5] पराय पाप कहि देहीं ॥
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी। बेदबिदूषक बिस्वबिरोधी ॥
लोभी लंपट[6] लोलुपचारा[7]। जे ताकहिं परधनु परदारा ॥
पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा। जौं जननी यह संमत मोरा ॥
जे नहिं साधु संग अनुरागे। परमारथ पथ बिमुख अभागे ॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई। जिन्हहिं न हरि-हर सुजसु सुहाई ॥
तजि स्रुतिपंथ बामपथ चलहीं। बंचक बिरचि बेषु[8] जगु छलहीं ॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं एहु जानौं भेऊ ॥

---

१ गो-शाला २ स्त्री और बालकों का बध ३ विष ४ काम, वाणी और मन से पैदा हुए ५ छलिया ६ कपटी ७ कर्म, मन बाणी से झूठे आचरण वाले ८ कपट का वेष बना कर ।

*'धन के लिये कुपात्र को वेद पढ़ाना' यह बेचना और 'गाय अथवा पुत्री को बेचना' यह धर्म का दुहना है । पातक महापापः—ब्रह्महत्या, सुरापान, गुरुपत्नी प्रेम, झूठ बोलना आदि और नियम भंग चोरी, झूठी गवाही आदि उपपाप हैं ।

दो०—मातु भरत के बचन सुनि, साँचे सरल सुभाय।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा वचन मन काय[1]॥१६९॥
राम प्रान तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहिं प्रान तें प्यारे॥
बिधुबिष चवै[2] स्रवै[3] हिमु[4] आगी। होइ बारचर बारि बिरागी[5]॥
भये ज्ञान बरु मिटे न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार एहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुखु सुगति न लहहीं॥
अस कहिं मातु भरत हिय लाये। थन पय स्रवहिं नयन जल छाये॥
करत बिलाप बहुत एहि भाँती। बैठेहि बीति गई सब राती॥
बामदेउ बसिष्ठ तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए॥
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे॥
दो०—तात हृदय धीरजु धरहु, करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुरुबचन सुनि, करन कहेउ सब साजु॥१७०॥
नृपतनु बेद-बिहित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमान बनावा॥
गहि पग भरत मातु सब राखीं। रहीं राम दरसन अभिलाखीं॥
चंदन-अगर-भार[6] बहु आये। अमित अनेक सुगंध सुहाये॥
सरजुतीर रचि चिता बनाई। जनु सुर पुर-सौपान[7] सुहाई॥
एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्हीं। बिधिवत न्हाइ तिलांजलि[8] दीन्हीं॥
सोधि सुमृति[9] सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात-बिधाना[10]॥
जहँ जस मुनिवर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सब कीन्हा॥
भए बिसुद्ध दिये सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना॥
दो०—सिंहासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम।
दिये भरत लहि भूमिसुर,भे परिपूरन काम॥१७१॥
पितुहित भरत कीन्हि जस करनी। सो मुख लाख जाहि नहिं बरनी॥

---

१ शरीर २ टपके ३ बसावे ४ पाला ५ पानी को छोड़ दे ६ (भार) तोल का प्रमाण ७ स्वर्ग की सीढ़ी ८ मृतात्मा को तिल आदि डाल कर तर्पण ९ स्मृति १० दशकर्म।

सुदिनु सोधि मुनिवर तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए॥
बैठे राज सभा सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई॥
भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति-धरम-मय बचन उचारे॥
प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी। केकइ कुटिल कीन्हि जस करनी॥
भूप धरमब्रतु सत्य सराहा। जेहि तनु परिहरि प्रेमु निबाहा॥
कहत राम-गुन-सील-सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ॥
बहुरि लषन-सिय-प्रीति बखानी। सोक-सनेह-मगन मुनि ग्यानी॥

दो०—सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ॥१७२॥

अस बिचारि केहि देइअ दोषू। ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोषू॥
तात बिचारु करहु मन माहीं। सोचु जोगु दसरथु नृप नाहीं॥
सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना[1]। तजि निज धरम बिषय लयलीना[2]॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥
सोचिअ बयसु[3] कृपन[4] धनवानू। जो न अतिथि सिबभगति सुजानू॥
सोचिअ सूद्र बिप्र-अपमानी[5]। मुखरु[6] मानप्रिय[7] ग्यानगुमानी[8]॥
सोचिअ पुनि पतिबंचक[9] नारी। कुटिल कलहप्रिय[10] इच्छाचारी॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई॥

दो०—सोचिअ गृही[11] जो मोहबस, करै करमपथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंचरत[12], बिगत[13] बिबेक बिराग॥१७३॥

बैषानस[14] सोइ सोचन जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावै भोगू॥
सोचिअ पिसुन[15] अकारन क्रोधी। जननि जनक-गुरु-बंधु-बिरोधी॥

---

१ वेद न पढ़ा हो २ लगा हुआ ३ वैश्य ४ लोभी ५ ब्राह्मण का जो अपमान करे (बहु०) ६ बकवादी ७ घमण्डी ८ ज्ञानका अभिमान हो जिसको (बहु०) ९ पति को धोका देने वाली १० लड़ाई ही जिसको प्यारी है ११ गृहस्थी १२ जालसाज १३ रहित १४ बानप्रस्थ १५ छलिया

सब बिधि सोचिअ पर-अपकारी । निज तनु-पोषक[1] निरदय भारी ॥
सोचनीय सब ही बिधि सोई । जो न छाँड़ि छलु हरिजन होई ॥
सोचनीय नहिं कोसलराऊ । भुअन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
भयेउ, न अहै, न अब होनिहारा । भूप भरत जस पिता तुम्हारा ॥
बिधि हरि हर सुरपति दिसिनाथा । बरनहिं सब दसरथ गुन-गाथा ॥
दो०—कहहु तात केहि भाँति कोउ, करहिं बड़ाई तासु ।
राम लषन तुम सत्रुहन, सरिस सुअन[2] सुचि जासु ॥ १७४ ॥
सब प्रकार भूपति बड़भागी । बादि बिषादु करिअ तेहि लागी ॥
एहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू । सिर धरि राज-रजायसु[3] करहू ॥
राय राजपदु तुम्ह कहँ दीन्हा । पिता-बचन फुर चाहिअ कीन्हा ॥
तजे रामु जेहि बचनहिं लागी । तनु परिहरेउ रामबिरहागी[4] ॥
नृपहि बचन प्रिय, नहिं प्रिय प्राना । करहु तात पितुबचन प्रमाना ॥
करहु सीस धरि भूपरजाई । है तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई ॥
*परसुराम पितुआग्याँ राखी । मारी मातु, लोग सब साखी[5] ॥
†तनय जजातिहि जौबनु दयेऊ । पितु आग्या अघ अजसु न भयेऊ ॥

---

१ अपने शरीर को पुष्ट करने वाला २ पुत्र ३ राजा की आज्ञा ४ श्री रामचन्द्र जी के विरह की अग्नि ५ आँखों से देखने वाला गवाही ।

*एक दिन परशुराम जी की माता रेणुका जमुना स्नान को गई । मछलियों को केलि करते देख उन्हें असमय क्रीड़ा की इच्छा हुई । घर जाकर पति से कहा । यमदग्नि ऋषि ने अप्रसन्न हो अपने पुत्रों को उसके शिर काटने की आज्ञा दी । तीन पुत्रों ने आज्ञा न मानी । छोटे पुत्र परशुराम ने पिता के कहने से तीनों भाई व माता का शिर काट डाला । ऋषि ने प्रसन्न हो वर माँगने को कहा उन्होंने कहा 'ये चारों जी उठें ।'

†चन्द्रवंशी राजा नहुष के पुत्र राजा ययाति के दो रानियाँ थीं । एक शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी दूसरी वृषपर्वा की शर्मिष्ठा । शुक्राचार्य ने विवाह के समय राजा से यह प्रतिज्ञा करा ली थी कि राजा शर्मिष्ठा से प्रेम न करे । परन्तु जब शर्मिष्ठा के पुत्र पैदा हुआ तो पता लगा कि

दो०—अनुचित उचित बिचारु तजि, जे पालिहिं पितु बैन ।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति-ऐन ॥१७५॥

अवसि नरेस बचन फुर करहू । पालहु प्रजा, सोक परिहरहू ॥
सुरपुर नृप पाइहि परितोषू । तुम्ह कहँ सुकृत सुजसु नहिं दोषू॥
बेद बिदित संमत सबहीका । जेहि पितु देइ सो पावै टीका ॥
करहु राजु परिहरहु गलानी । मानहु मोर बचन हित जानी ॥
सुनि सुखु लहब रामबैदेही । अनुचित कहब न पंडित केही[1]॥
कोसल्यादि सकल महतारी । तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारी ॥
मरम तुम्हार राम कर जानहि । सोसबबिधि तुम्ह सन भल मानहि ॥
सौंपेहु राजु राम के आएँ । सेवा करेहु सनेह सुहाएँ ॥

दो०—कीजिअ गुर-आयसु अवसि, कहहिं सचिव कर जोरि ।
रघुपति आएँ उचित जस, तस तब करब बहोरि ॥१७६॥

कौसल्या धरि धीरजु कहई । पूत[2] पथ्य[3] गुरु-आयसु अहई ॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी । तजिअ बिषादु कालगति जानी ॥
बन रघुपति सुरपुर नरनाहू । तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू[4] ॥
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा । तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा ॥
लखि बिधि बाम कालु-कठिनाई । धीरजु धरहु मातु बलि जाई ॥
सिर धरि गुरआयुस अनुसरहू । प्रजा पालि परि-जन-दुख हरहू ॥

---

राजा ने प्रतिज्ञा-भंग की है । शुक्राचार्य जी ने उसे शाप देकर बुढ्ढा बना दिया। राजा ने जब बहुत प्रार्थना की तो शुक्राचार्य ने युवा अवस्था बदलने का नियम बना दिया । राजा ने अपने सब पुत्रों से जवानी बदलने के लिये एक एक करके कहा, परन्तु कोई राजी न हुआ, केवल छोटे लड़के ने अपनी जवानी देकर बुढ़ापा ले लिया और १००० वर्ष पीछे वापिस लेकर पुरु नामक राज्याधिकारी हुआ ।

१ कोई भी २ पुत् नाम नरक से बचाने वाला, पुत्र ३ हितकारक ४ कायर बनते हो ।

गुर के बचन सचिव अभिनंदनु । सुने भरत हिय हित जनु चंदनु ॥
सुनी बहोरि मातु मृदुबानी । सील-सनेह सरल-रस सानी ॥
छंद०—सानी सरल रस मातुबानी सुनि भरत ब्याकुल भए ।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नए ॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की ।
तुलसी सराहत सकल सादर सींव सहज सनेह की ॥

सो०—भरत कमलकर जोरि, धीर-धुरंधर-धीर धरि ।
बचनु अमिअ जनु बोरि देत, उचित उत्तर सबहिं ॥१७७॥

मोहि उपदेसु दीन्ह गुरु नीका । प्रजा सचिव संमत सबहीका ॥
मातु उचित पुनि आयसु दीन्हा । अवसि सीस धरि चाहौं कीन्हा ॥
गुर पितु मातु-स्वामी-हित-बानी । सुनिमन मुदित करिअ भलिजानी ।
उचित कि अनुचित किए बिचारू । धरमु जाइ सिर पातक भारू ॥
तुम्ह तौ देउ सरल सिख सोई । जो आचरत[1] मोर भल होई ॥
जद्यपि एहि समुझत हौं नीके । तदपि होत परितोषु न जी के ॥
अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू । मोहि अनुहरत सिखावनु देहू ॥
उत्तर देउँ छमब अपराधू । दुखित-दोष-गुन गनहिं न साधू ॥

दो०—पितु सुरपुर, सिय राम बन, करनु कहहु मोहि राजु ।
एहि ते जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काजु ॥१७८॥

हित हमार सिय-पति-सेवकाई । सो हरि लीन्हि मातु कुटिलाई ॥
मैं अनुमानि दीख मन माँहीं । आन[2] उपाय मोर हित नाहीं ॥
सोकसमाजु राजु केहि लेखे । लषन-राम-सिय-पद बिनु देखे ॥
बादि[3] बसन बिनु भूषन-भारू । बादि बिरति[4] बिनुब्रह्म बिचारू ॥
सरुज[5] सरीर बादि बहु भोगा । बिनु हरिभगति जाय जप जोगा ॥
जाँय[6] जीव बिनु देह सुहाई । बादि मोर सबु बिनु रघुराई ॥

---

१ करने से २ दूसरा ३ व्यर्थ ४ वैराग्य ५ रोगी ६ बे काम ।

जाउँ राम पहिं आयसु देहू । एकहि आँक मोर हित एहू ॥
मोहि नृपकरि भल आपन चहहू । सोउ सनेह जड़ता बस[1] कहहू ॥

दो०—कैकेइसुअन कुटिल मति, रामबिमुख गतलाज ।*
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस, मोहि से अधमु के राज ॥१७९॥

कहौं साँच सब सुनि पतियाहू । चाहिअ धरमसील नरनाहू ॥
मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं । रसा[2] रसातल[3] जाइहि तबहीं ॥
मोहि समान को पापनिबासू । जेहि लगि सीयराम बनबासू ॥
राय राम कहुँ कानन दीन्हा । बिछुरत गमनु अमरपुर[4] कीन्हा ॥
मैं सठ सब अनरथ कर हेतू । बैठ बात सब सुनउँ सचेतू ॥
बिन रघुबीर बिलोकिय बासू । रहे प्रान सहि जग उपहासू[5] ॥
राम पुनीत बिषयरस रूखे । लोलुप भूमिभोग के भूखे ॥
कहँ लगि कहउँ हृदय-कठिनाई । निदरि कुलिसु जेहि लही बड़ाई ॥

दो०—कारन तें कारजु कठिन, होइ दोस नहिं मोर ।
कुलिस अस्थि[6] तें उपल तें लोह कराल कठोर ॥१८०॥

कैकेई भव तनु अनुरागे । पाँवर[7] प्रान अघाइ अभागे ॥
जो प्रियबिरह[8] प्रान प्रिय लागे । देखब सुनब बहुत अब आगे ॥
लषन राम सिय कहुँ बनु दीन्हा । पठै अमरपुर पतिहित कीन्हा ॥
लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू । दीन्हेउ प्रजहिं सोकु संतापू[9] ॥
मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू । कीन्ह कैकई सब कर काजू ॥
एहि ते मोर काह अब नीका । तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका[10] ॥
कैकइजठर[11] जनमि जगमाहीं । एह मोहि कहँ कछु अनुचित नाहीं ॥
मोरि बात सब बिधिहि बनाई । प्रजा पाँच कत करहु सहाई ॥

---

१ मूर्खता से २ पृथ्वी ३ पाताल ४ अमरावती ५ हँसी ६ हड्डी ७ नीच ८ प्यारे की जुदाई ९ दुःख १० राज्य ११ कैकेयी के पेट से ।
*राम से विमुख, राम-विमुख। गत है लाज जिसकी (बहु०) निर्लज्ज।

दो०—ग्रहग्रहीत[१] पुनि बातबस[२], तेहि पुनि बीछी-मार[३]।
तेहि पिआइअ बारुनी[४], कहहु कवन उपचार[५]॥१८१॥
कैकइसुअन-जोग जग जोई। चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई॥
दसरथ तनय राम-लघु-भाई। दीन्हि मोहि बिधि बादि बड़ाई॥
तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका[६]। रायरजायसु सब कहँ नीका॥
उतरु देउँ केहि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन[७] जथारुचि जेही॥
मोहि कुमातु-समेत बिहाई। कहहु कहिहि को कीन्हि भलाई॥
मो बिनु को सचराचर माहीं। जेहि सियरामु प्रानप्रिय नाहीं॥
परम हानि सबु कहँ बड़ लाहू। अदिन[८] मोर नहिं दूषन काहू॥
संसय[९] सील प्रेमबस अहहू। सबुइ उचित सबु जो कछु कहहू॥

दो०—राममातु सुठि सरलचित, मो पर प्रेमु बिसेखि।
कहै सुभाय सनेहबस, मोरि दीनता देखि॥१८२॥
गुरु बिबेक सागर जग जाना। जिन्हहिं बिस्वकर-बदर-समाना[१०]
मोकहुँ तिलकसाज सज सोऊ। भए बिधि-बिमुख[११] बिमुखसबकोऊ
परिहरि[१२] रामुसीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं॥
सो मैं सुनब सहब सुख मानी। अंतहु कीच तहाँ जहँ पानी॥
डर न मोहि जग कहहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू॥
एकै उर बस दुसह दवारी[१३]। मोहि लगि भे सियराम दुखारी॥
जीवनलाहु लषन भल पावा। सबु तजि रामचरनु मन लावा॥
मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी॥

दो०—आपन दारुन दीनता[१४] कहउँ सबहिं सिरनाइ।
देखे बिनु रघु-नाथ पद, जिय कै जरनि न जाइ॥१८३॥

---

१ ग्रहों से घिरा हुआ २ सन्निपात में ३ डंक ४ शराब ५ इलाज ६ राज्य देना ७ सुख से ८ बुरे दिन ९ सन्देह १० हथेली पर रक्खे हुए बेर के समान ११ उलटे १२ छोड़ कर १३ असह्य दुःखाग्नि १४ बड़ी ग़रीबी।

आन उपाय मोहि नहिं सूझा । को जिय कै रघुबर बिन बूझा ॥
एकहि आँक[1] इहै मन माहीं । प्रातकाल चलिहौं प्रभु पाहीं ॥
जद्यपि मैं अनभल अपराधी[2] । भइ मोहि कारन सकल उपाधी ॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी । छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी ।
सीलु सकुचि सुठि सरल सुभाऊ । कृपा-सनेह-सदन रघुराऊ ॥
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा । मैं सिसु[4] सेवकु जद्यपि बामा[5] ॥
तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी । आयसु आसिष देहु सुबानी ॥
जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी । आवहिं बहुरि[6] राम रजधानी ॥

दो०—जद्यपि जनमु कुमातु तें, मैं सठ सदा सदोस[7] ।
आपन जानि न त्यागहहिं, मोहि रघु-बीर भरोस ॥१८४॥

भरत-बचन सब कहँ प्रिय लागे । राम-सनेह-सुधा[8] जनु पागे[9] ॥
लोग बियोग-बिषम-बिष दागे । मंत्र सजीव सुनत जनु जागे ॥
मातु सचिव गुर पुर-नर-नारी । सकल सनेह बिकल भये भारी ।
भरतहिं कहहिं सराहि सराही । राम-प्रेम-मूरति-तनु आही[10] ॥
तात भरत अस काहे न कहहु । प्रान समान राम प्रिय अहहू ।
जो पाँवरु[11] अपनी जड़ताई । तुम्हहिं सुगाइ[12] मातुकुटिलाई ॥
सो सठु कोटिक-पुरुष-समेता । बसहि कलपसत[13] नरकनिकेता[14] ॥
अहि-अघ अवगुन नहिं मनि गहई । हरै गरल[15] दुख दारिद दहई[16] ॥

दो०—अवसि चलिअ बन राम जहँ, भरत मंत्र भल कीन्ह ।
सोकसिंधु बूढ़त सबहि, तुम्ह अवलंबनु दीन्ह ॥१८५॥

भा सबके मन मोदु न थोरा । जनु घनधुनि सुनि चातक मोरा ॥
चलत प्रात लखि निरनउ[17] नीके । भरतु प्रानप्रिय भे सबही के ॥

---

१ ध्वनि—'जाऊँ' २ कसूरवार ३ झगड़े ४ बच्चा ५ प्रतिकूल ६ लौट आवें ७ अपराधी ८ राम के स्नेह रूपी अमृत ९ सने हुए १० राम के प्रेम की शरीरधारी मूर्ति है ११ नीच १२ कहे १३ सौ कल्प तक १४ नरक + निकेता, यमपुर १५ विष १६ नाश होता है १७ निर्णय ।

मुनिहिं बंदि भरतहि सिरु नाई । चले सकल[१] घर बिदा कराई ॥
धन्य-भरतु जीवनु जग माहीं । सीलु सनेह सराहत[२] जाहीं ॥
कहहिं परसपर भा बड़ काजू । सकल चले कर[३] साजहिं साजू ॥
जेहिं राखहिं रहु घर रखबारी । सो जानें जनु गरदन मारी[४] ॥
कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू । को न चहै जग जीवनु-लाहू ॥

दो०—जरउ सो संपति-सदन-सुखु, सुहृद मातु पितु भाइ ।
सनमुख होत जो रामपद, करै न सहस सहाइ[५] ॥ १८६ ॥

घर घर साजहिं बाहन नाना । हरषु हृदय परभात[६] पयाना ॥
भरत जाइ घर कीन बिचारू । नगरु बाजि गज भवन भँडारू ॥
संपति सब रघुपति कै आही । जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही ॥
तौ परिनाम[७] न मोरि भलाई । पाप-सिरोमनि[८] साइँ दुहाई[९] ॥
करै स्वामिहित सेवक सोई । दूखन[१०] कोटि देइ किन कोई ॥
अस बिचारि सुचि सेवक बोले । जे सपनेहुँ निज धरमु न डोले[११] ॥
कहि सब मरमु धरमु सब भाखा । जो जेहि लायक सो तहँ राखा ॥
करि सबु जतनु राखि रखवारे । राममातुपहिं भरत सिधारे ॥

दो०—आरति जननी जानि सब, भरत सनेह सुजान ।
कहेउ बनावन पालकी सजन[१२] सुखासन[१३] जान ॥ १८७ ॥

चक्कचक्कि[१४] जिमि पुर-नर नारी । चलत प्रात उर आरत भारी ॥
जागत सबनिसि भयेउ बिहाना[१५] । भरत बोलाए सचिव सुजाना ॥
कहेउ लेहु सब तिलक समाजू । बनहिं देव मुनि रामहिं राजू ॥
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे । तुरत तुरग रथ नाग[१६] सँवारे ॥

---

१ सब लोग २ प्रशंसा करते हुए ३ चलने का ४ प्राण लिये ५ सहायता ६ प्रातःकाल ७ अंत में ८ पापियों में सरदार ९ स्वामी की सौगंध १० (दूषण) दोष ११ पक्के ईमानदार १२ तैयार करने को १३ सुख+आसन, पिनस १४ चक्रवाक १५ प्रातःकाल १६ हाथी ।

अरुधंती[1] अरु अगिनिसमाऊ[2]। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ ॥
बिप्रबृन्द[3] चढ़ि बाहन[4] नाना। चले सकल तप-तेज-निधाना ॥
नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूटकहँ कीन्ह पयाना ॥
सिबिका सुभग[5] न जाहिं बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी ॥

दो०—सौंपि नगरु सुचि सेवकनि, सादर सबहिं चलाइ।
सुमिरि राम-सिय-चरन तब, चले भरतु दोउ भाइ। १८८॥

राम-दरस-बस सब नरनारी। जनुकरि करिनि[6] चले तकि बारी॥[7]
तन सिय रामु समुझि मन माहीं। सानुज[8] भरत पयादेहि जाहीं॥
देखि सनेह लोग अनुरागे। उतरि चले हय गय रथ त्यागे।
जाइ समीप राखि निज डोली। राम मातु मृदुबानी बोली ॥
तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवारु दुखारी॥
तुम्हरे चलत चलिहि सब लोगू। सकल सोक कृस[9] नहिं मग जोगू॥
सिर धरि बचन चरन सिरुनाई। रथ चढ़ि चलत भए दोऊ भाई ॥
तमसा प्रथम दिवस कर बासू। दूसरि गोमतितीर निबासू॥

दो०—पय अहार[10] फल असन[11] एक निसि भोजन एकलोग।
करत राम हित नेम ब्रत, परिहरि भूषन भोग ॥ १८९ ॥

सई तीर बसि चले बिहाने। शृंगबेरपुर सब नियराने ॥
समाचार सब सुने निषादा। हृदय बिचार करै सबिषादा॥
कारन कवनु भरतु बन जाहीं। है कछु कपट भाउ मनमाहीं ॥
जौं पै जिअ न होत कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई[12]॥
जानहिं सानुज रामहिं मारी। करौं अकंटक राजु सुखारी[13]

---

१ वशिष्ठ-पत्नी २ हवन-सामग्री, श्रुवा, साकल्य, समिधा अग्नि-कुण्ड इत्यादि ३ ब्राह्मण लोग ४ सवारी ५ सुन्दर पालकी ६ हाथी हथिनी ७ पानी देखकर ८ स + अनुज, भाई सहित ९ शोक से दुर्बल १० दूध पीकर ११ फल खाकर १२ सेना १३ निर्विघ्न सुख से।

भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंकु[1] अब जीवनुहानी[2]॥
सकल सुरासुर[3] जुरहिं जुझारा। रामहिं समर न जीतनिहारा॥
का आचरजु भरतु अस करहीं। नहिं विष बेलि अमिअफलफरहीं॥
दोहा—अस बिचारि गुह ग्याति सन, कहेउ सजग सब होहु।
हथबाँसहु[4] बोरहु तरनि[5], कीजिअ घाटा रोहु[6]॥१९०॥
होहु सँजोइल[7] रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा[8]॥
सनमुख लोह भरतसन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ॥
समरु मरन पुनि-सुर-सरि-तीरा। रामकाजु छनभंगु[9] सरीरा॥
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू। बड़े भाग असि पाइअ मीचू[10]॥
स्वामिकाज करिहहुँ रन रारी[11]। जस धवलिहउँ[12] भुवनदसचारी॥
तजउँ प्रान रघुनाथ-निहोरें। दुहूँ हाथ मुद मोदक[13] मोरें॥
साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महँ जासु न रेखा॥
जाँय जिअत जगसो महि भारू। जननी-जोबन-बिटप-कुठारू[14]॥
दोहा—बिगतबिषाद निषादपति, सबहि बढ़ाइ उछाउ।
सुमिरि राम माँगेउ तुरत. तरकस धनुष सनाउ॥१९१॥
बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ॥
भलेहि नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढ़ावै करषा[15]॥
चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचै रारी॥
सुमिरि राम-पद-पंकज-पनही। भाथी बाँधि चढ़ाइन्हि धनुही॥
अँगरी[16] पहिरि कूड़ि[17] सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल-सम[18] करहीं॥
एक कुसल अति ओढ़न[19] खाँड़ें। कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े॥

---

१ बुराई २ मृत्यु ३ सुर+असुर ४ नाव खेने का बाँस, पतवार ५ नाव ६ घाट रोक देना ७ सावधान ८ तैयारी ९ क्षण में जो नष्ट हो जाय (बहु०) १० मृत्यु ११ युद्ध १२ प्रकाशित कर १३ दोनों तरह भलाई है १४ माता के योवन रूप वृक्ष को काटने के लिये कुल्हाड़ी १५ जोश १६ कवच १७ लोहे की टोपी १८ सुधारते हैं १९ ढाल।

निज निज साजु समाजु बनाई । गुह राउतहिं[1] जोहारे जाई ॥
देखि सुभट सब लायक जाने । लै लै नाम सकल सनमाने ॥

दो०—भाइहु लाबहु धोख जनि, आजु काजु बड़ मोहि ।
सुनि सरोष बोले सुभट, बीर अधीर[2] न होहि ॥१९२॥

रामप्रताप नाथ बल तोरें । करहिं कटक बिनु भट बिनु घोरें ॥
जीवत पाँउ न पाछे धरहीं । रुंड-मुंड मय मेदिनि[3] करहीं ॥
दीख निषादनाथ भल टोलू[4] । कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू[5] ॥
इतना कहत छींक भई बाएँ । कहेउ सगुनिअन्ह खेतसुहाएँ[6] ॥
बूढ़ एक कह सगुन बिचारी । भरतहिं मिलिअ न होइहि रारी ॥
रामहिं भरत मनावन जाहीं । सगुन कहै अस बिग्रहु[7] नाहीं ॥
सुनि गुह कहै नीक कह बूढ़ा । सहसा[8] करि पछिताहिं बिमूढ़ा[9] ॥
भरत सुभाव सील बिनु बूझे । बड़ि हितहानि जानि बिन जूझे ॥

दो०—गहहु घाट भट सिमिट सब, लेउँ मरम मिलि जाइ ।
बूझि मित्र अरि मध्यगति तब तस करिहउँ आइ ॥१९३॥

लखब सनेहु सुभाय सुहाए । बैर प्रीति नहिं दुरै दुराए ॥
अस कहि भेंट सँजोवन लागे । कंद मूल फल खग मृग माँगे ॥
मीन पीन[10] पाठीन[11] पुराने । भरि भरि भार कहारन्ह आने ॥
मिलन साजु सजि मिलन सिधाए । मंगलमूल सगुन सुभ पाए ॥
देखि दूरि ते कहि निज नामू । कीन्ह मुनीसहिं दंडप्रनामू ॥
जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा । भरतहिं कहेउ बुझाइ मुनीसा ॥
रामसखा[12] सुनि स्यंदनु[13] त्यागा । चले उतरि उमँगत[14] अनुरागा ॥
गाउँ जाति गुह नाउँ सुनाई । कीन्ह जोहारु माथ[15] महि लाई ॥

---

१ अपने स्वामी को २ घबड़ाओ नहीं ३ धरती ४ जमाव सेना ५-लड़ाई के बाजे ६ अच्छा सगुन ७ लड़ाई ८ शीघ्रता ९ मूर्ख १० मोटी ११ एक प्रकार की मछली १२ राम का सखा गुह १३ रथ १४ (उमंग) लहर में आकर १५ धरती पर माथा टेक कर ।

दो०—करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लषनसन भेंट भइ प्रेमु न हृदय समाइ ॥ १९४ ॥

भेंटत भरत ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती ॥
धन्य धन्य धुनि मंगलमूला। सुर सराहिं तेहि बरसहिं फूला ॥
लोक बेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा ॥
तेहि भरि अंक राम-लघु-भ्राता। मिलत पुलकपरिपूरित गाता ॥
राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहिं न पाप-पुंज समुहाहीं ॥
एहि तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जगु पावन कीन्हा ॥
करमनास-जल सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरहई ॥
उलटा नाम जपत जग जाना। *बालमीकि भए ब्रह्म समाना ॥

दो० – स्वपच सबर खस जवन जड़, पाँवर कोल किरात।
राम कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात ॥ १९५ ॥

नहिं अचरज जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्ह रघुबीर बड़ाई ॥
रामनाम महिमा सुर कहहीं। सुनि सुनि अवध लोग सुख लहहीं ॥
राम सखहिं मिल भरत सप्रेमा। पूँछी कुसल सुमंगल छेमा ॥
देखि भरत कर सीलु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू ॥
सकुच सनेहु मोदु मन बाढ़ा। भरतहिं चितवत एकटक ठाढ़ा ॥
धरि धीरजु पद बंदि बहोरी। बिनय सप्रेम करत कर जोरी ॥
कुसलमूल पदपंकज पेखी। मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी ॥

---

†कर्मनाशा का जल सब पुण्यों को नष्ट कर देता है।

*बालमीकि ने साधारण ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था। बचपन में बहेलियों के साथ रहे। इससे बड़े होने पर लूट मारकर अपने बाल-बच्चों का पालन करने लगे। एक बार ये सप्तऋषियों के पीछे दौड़े। सप्तऋषियों ने पूछा कि तुम्हारे घर वाले केवल खाने वाले हैं या तुम्हारे पाप के भी भागी हैं। इन्होंने घर वालों से जाकर पूछा तो कोरा जवाब मिला। तब ऋषियों के उपदेश से राम नाम का यहाँ तक जप किया कि शरीर पर डीम जम गई। तब से इनका नाम बाल्मीकि हुआ।

अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें। सहित कोटि कुल मंगल मोरें॥
दो०—समुझि मोरि करतूत कुलु, प्रभु महिमा जिअ जोइ।
जो न भजइ रघुबीर-पद, जग बिधि बंचित सोइ॥१९६॥
कपटी कायरु कुमति कुजाती। लोक बेद बाहिर[1] सब भाँती॥
राम कीन्ह आपन जबही तें। भयेउँ भुवन-भूषन[2] तबही तें॥
देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई। मिलेउ बहोरि भरत-लघु-भाई॥
कहि निषाद निज नाम सुबानी। सादर सकल जोहारी रानी॥
जानि लषनसम देहिं असोसा। जिअहु सुखी सय लाख बरीसा[3]
निरखि निषादु नगर-नर-नारी। भए सुखी जनु लषनु निहारी॥
कहहिं लहेउ एहि जीवन-लाहू। भेंटेउ रामचन्द्र भरि बाहू॥
सुनि निषादु निज-भाग बड़ाई। प्रमुदित मन लै चलेउ लेवाई॥
दो०—सनकारे[4] सेवक सकल, चले स्वामि-रुख पाइ।
घर तरु तर सर[5] बाग बन, बास बनाएन्हि जाइ॥१९७॥
शृंगबेरपुर भरत दीख जब। भे सनेह सब अंग सिथिल तब॥
सोहत दिए निषादहि लागू[6]। जनु तनु धरे बिनय अनुरागू॥
एहि बिधि भरत सेन सब संगा। दीख जाइ जगपावनि गंगा॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू॥
करहिं प्रनाम नगर-नर नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी॥
करि मज्जनु माँगहिं कर जोरी। रामचन्द्र-पद-प्रीति न थोरी॥
भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल-सुखद-सेवक-सुर-धेनू॥
जोरि पानि बर माँगहुँ एहू। सीय-राम-पद-सहज-सनेहू॥
दो०—एहि बिधि मज्जनु भरतु करि, गुर अनुसासन[7] पाइ।
मातु नहानीं जानि सब, डेरा चले लेवाइ॥१९८॥

---

१ न तो लोक में ही हमारी कुछ गणना है न वेद में ही हमारी कुछ पहुँच है २ प्रतिष्ठित ३ वर्ष ४ सैनकारे, इशारा किया ५ सर में बास बनाया इसके दो अर्थ हैं—(लक्षणा से) सर के किनारे पर बास (वाक्य में) सर में पड़ी हुई नावों पर बास बनाया ६ साथ लिये हुए ७ आज्ञा।

जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोध[1] सबहीं कर लीन्हा॥
सुरसेवा करि आयसु पाई। राममातु पहिं गे दोउ भाई॥
चरन चाँपि कहि कहि मृदुबानी। जननी सकल भरत सनमानी॥
भाइहिं सौंपि मातु सेवकाई। आपु निषादहि लीन्ह बोलाई॥
चले सखा करसों कर जोरें। सिथिल सरीरु सनेहु न थोरें॥
पूछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन-मन-जरनि जुड़ाऊ॥
जहँ सिय रामु लषनु निसि सोये। कहत भरे जल लोचन-कोये[2]॥
भरतबचन सुनि भयउ बिषादू। तुरत तहाँ लै गयेउ निषादू॥
दो०—जहँ सिंसुपा[3] पुनीत तरु, रघुबर किय बिस्रामु।
अति सनेह सादर भरत, कीन्हेउ दंड प्रनामु॥१९९॥
कुस साथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनामप्रदच्छिन[4] जाई॥
चरन-रेख-रज आखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई॥
कनकबिंदु[5] दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीयसम लेखे॥
सजल विलोचन हृदय गलानी। कहत सखासन वचन सुबानी॥
श्रीहत सीयबिरह दुतिहीना[6]। जथा अवध नरनारि मलीना॥
पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल[7] भोगु जोगु जग जेही॥
ससुर भानु-कुल-भानु भुआलू। जेहि सिहात अमरावति-पालू[8]॥
प्राननाथु रघुनाथ गोसाईं। जे जड़ होत सो रामबड़ाई॥
दो०—पतिदेवता[9] सुतीय-मनि, सीय साथरी देखि।
बिहरत[10] हृदउ न हहरि हर, पबि[11] तें कठिन बिसेखि॥२००॥
लालनजोगु[12] लषन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय-रघुबीरहिं प्रानपियारे॥

---

१ ढूँढ़ा, सुध ली २ पलकों पर आँसू डबडबा आये ३ शीशम ४ प्रदक्षिणा ५ साड़ी के सुनहरी (सितारे) रौना ६ सीताजी के विरह से कान्ति हीन हैं (श्री=तेज, दुति=शोभा) ७ हथेली पर ८ इन्द्र ९ पति ही हैं देवता जिसके (बहुव्रीहि) पतिव्रता १० फटता है ११ वज्र से १२ प्यार करने योग्य।

मृदुमूरति[1] सुकुमार सुभाऊ। ताति बाउ[2] तन लाग न काऊ[3]।
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे[4] कोटि कुलिस एहि छाती॥
राम जनमि जगु कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुनसागर॥
पुरजन परिजन गुरु पितु माता। रामसुभाउ सबहिं सुखदाता॥
बैरिउ रामबड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि* बिनय मन हरहीं॥
सादर कोटि कोटिसत सेखा[5]। करि न सकहिं प्रभु-गुन-गन लेखा॥

दो० – सुखसरूप रघु-बंस-मनि, मंगल-मोद निधानु
ते सोवत कुस डासि महि, बिधिगति अति बलवानु॥२०१॥

राम सुना दुखु कानन काऊ। जीवनतरु जिमि जुगवै राऊ॥
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती। जुगवहिं जननि सकल दिन राती॥
ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कंद-मूल-फल-फूल अहारी॥
धिग कैकेई अमंगल मूला। भइसि प्रान प्रियतम-प्रतिकूला॥
मैं धिग धिग अघ-उदधि अभागी। सबु उतपातु भयेउ जेहि लागी॥
कुल-कलंकु करि सृजेउ[6] बिधाता। साइँ द्रोह मोहि कीन्ह कुमाता।
सुनि सप्रेम समुझाव निषादू। नाथ करिअ कत बादि बिषादू।
राम तुम्हहिं प्रिय तुम्ह प्रिय रामहिं। एह निरदोसु दोसु बिधि बामहिं[7]॥

छंद—बिधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सराहन[8] रावरी॥
तुलसी न तुम्ह सौं राम प्रीतमु कहत हौं सौंहैं किए[9]।
परिनाम मंगलु जानि अपने आनिए धीरज हिए॥

सो०—अंतरजामी राम, सकुच सप्रेम कृपायतन।
चलिअ करिअ बिस्राम, यह बिचार दृढ़ आनि[10] मन॥२०२॥

---

१ मृदु है मूरति जिसकी सो मृदु मूरति (बहुव्रीहि) २ वायु ३ कभी ४ नीचा दिखाती है ५ शेषनाग ६ उत्पन्न किया। ७ कुटिल ८ प्रशंसा ९ सौगंध खाकर १० लाकर *बोलना मिलना (भाव वा० सं०)

सखा बचन सुनि उर धरि धीरा। बास[१] चले सुमिरत रघुबीरा ॥
यह सुधि पाइ नगर-नर-नारी। चले बिलोकन आरत भारी ॥
परदछिना[२] करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकइहि खोरि[३] निकामा[४] ॥
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं। बाम बिधातहिं दूषन देहीं ॥
एक सराहहिं भरतसनेहू। कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू ॥
निंदहिं आपु सराहिं निषादहिं। को कहि सकै बिमोहबिषादहिं ॥
एहि बिधि राति लोगु सबु जागा। भा भिनुसार[५] गुदारा[६] लागा ॥
गुरहिं सुनाव चढ़ाइ सुहाई। नई नाव सब मातु चढ़ाई ॥
दंड[७] चारि महँ भा सबु पारा। उतरि भरत तब सबहिं सँभारा ॥

दोहा—प्रातक्रिया करि मातुपद, बंदि गुरहिं सिर नाइ।
आगें किए निषादगन, दीन्हेउ कटक[८] चलाइ ॥२०३॥

कियेउ निषादनाथ अगुआई[९]। मातु पालकी सकल चलाई ॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। बिप्रन सहित गमनु गुरु कीन्हा ॥
आप सुरसरिहिं कीन्ह प्रनामू। सुमिरे लषनसहित सियरामू ॥
गवने भरत पयादेहि पाए। कोतल संग जाहिं डुरिआए[१०] ॥
कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइअ नाथ अस्व असवारा ॥
राम पयादेहि पाय सिधाए। हमकहँ रथ गज बाजि बनाए ॥
सिरभर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवकधरमु कठोरा ॥
देखि भरतगति, सुनि मृदुबानी। सब सेवकगन गरहिं गलानी ॥

दोहा—भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रबेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय, उमगि उमगि अनुराग ॥२०४॥

झलका[११] झलकत पायन्ह कैसें। पंकजकोस[१२] ओसकन जैसें ॥

---

१ (निवास) डेरा २ (प्रदक्षिणा) परिक्रमा ३ दोष ४ व्यर्थ ५ सबेरा ६ पार उतरने लगे ७ घड़ी ८ सेना ९ पथ-प्रदर्शन १० रस्सी पकड़े हुए ११ छाले १२ कमल के फूल का भीतरी भाग।

भरत पयादेहि आये आजू । भयेउ दुखित सुनि सकलसमाजू॥
खबरि लीन्हि सब लोग नहाए । कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहि आए ॥
सबिधि सितासित[1] नीर नहाने। दिए दान महिसुर[2] सनमाने ॥
देखत स्यामल-धवल-हिलोरे । पुलकि सरीर भरत कर जोरे ॥
सकल-काम प्रद तीरथ राऊ । बेदबिदित जग प्रगट प्रभाऊ ॥
*माँगउँ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करै कुकरमू ॥
अस जिय जानि सुजान सुदानी। सफल करहिं जग जाचकबानी[3] ॥
दो०—अरथ न धरम न कामरुचि गति न चहउँ निरबान[4] ।
जनम जनम रति रामपद यह बरदानु न आन[5] ॥२०५॥
जानहु राम कुटिल करि मोही । लोग कहउ गुरु-साहिब द्रोही ॥
सीता-राम-चरन रति मोरें । अनुदिन[6] बढ़ै अनुग्रह[7] तोरें ॥
जलदु जनम भरि सुरति बिसारेउ । जाँचत जलु पबि पाहन[8] डारेउ॥
चातक रटनि घटे घटि जाई । बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई ॥
कनकहि[9] बान[10] चढ़ै जिमि दाहें। तिमि प्रियतम-पद नेह निबाहें ॥
भरत-बचन सुनि माँझ त्रिबेनी , भई मृदुबानि सु-मंगल-देनी ॥
तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू। राम-चरन-अनुराग-अगाधू ॥
बादि गलानि करहु मन माहीं । तुम्ह सम रामहिं कोउ प्रिय नाहीं॥
दो०—तनु पुलकेउ हिय हरषु सुनि, बेनि बचन अनुकूल ।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल । २०६ ।
प्रमुदित[11] तीरथ-राज-निवासी । बैषानस बटु गृही उदासी† ॥
कहहिं परस्पर मिलि दस पाँचा। भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा ॥
सुनत राम-गुन-ग्राम सुहाए । भरद्वाज मुनिवर पहिं आए ॥

---

*माँगना क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध है †वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, गृहस्थी और उदासीन ।

१ श्वेत श्याम २ ब्राह्मण ३ भिक्षुक का प्रश्न ४ मोक्ष ५ दूसरा ६ दिन प्रतिदिन ७ कृपा ८ बज्र और पत्थर ९ सोने में १० वर्ण, आव ११ प्रसन्न ।

दंडप्रनामु करत मुनि देखे। मूरतिमंत भाग[1] निज लेखे॥
धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे। दीन्हि असीस कृतारथ[2] कीन्हे॥
आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे। चहत सकुच गृह जनु भजि पैठे॥
मुनि पूछब कछु एह बड़ सोचू। बोले रिषि लखि सीलुसंकोचू॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर कछु न बसाई।

दो०--तुम्ह गलानि[3] जिय जनि करहु, समुझि मातु करतूति।
तात कैकेइहि दोषु नहिं, गई गिरा मति धूति[4] ॥२०७॥

यहहु कहत भल कहिहि न कोऊ। लोकु बेद बुध सम्मत दोऊ॥
तात तुम्हार बिमल जस गाई। पाइहि लोकउ बेदु बड़ाई॥
लोक-बेद-सम्मत सब कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई॥
राउ सत्यब्रत[5] तुमहिं बोलाई। देत राजु सबु धरमु बड़ाई॥
रामगवनु बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला॥
सो भावीबस रानि सयानी। करि कुचालि अंतहु पछितानी॥
तहउँ तुम्हार अलप अपराधू। कहै सो अधम अयान[6] असाधू॥
करतेहु राज त तुम्हहि न दोषू। रामहिं होत सुनत संतोषू॥

दो०--अब अति कीन्हेउ भरत भल तुम्हहि उचित मत एहु।
सकल सुमंगल मूल जग रघुबर-चरन-सनेहु ॥२०८॥

सो तुम्हार धनु जीवन प्राना। भूरि-भाग[7] को तुम्हहि समाना॥
यह तुम्हार आचरज न ताता। दसरथसुअन राम-प्रिय भ्राता॥
सुनहु भरत रघु-बर मन माहीं। प्रेमपात्रु तुम सम कोउ नाहीं॥
लषन राम सीतहिं अति प्रीती। निसि सब तुम्हहिं सराहत[8] बीती॥
जाना मरमु नहात[9] प्रयागा। मगन होहि तुम्हरे अनुरागा॥

---

१ भाग्य ही शरीर धारण किये हुए है २ फलीभूत ३ दुःख ४ बुद्धि भ्रष्ट ५ सत्य ही है व्रत जिसका सो सत्यव्रत ६ मूर्ख ७ बड़भागी ८ प्रशंसा करते हुए ९ स्नान करते हुए।

तुम्ह पर अस सनेह रघुबर के। सुख जीवन जग जस जड़ नरके॥
एह न अधिक रघुबीर बड़ाई। प्रनत-कुटुंब-पाल[1] रघुराई॥
तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु रामसनेहू॥
दो०—तुम कहँ भरत कलंक[2] एह, हम सब कहँ उपदेसु।
राम-भगति-रस-सिद्धि हित, भा एह समउ गनेसु† ॥२०९॥
*नवबिधुबिमल[3] तात जसु तोरा। रघुबर किंकर-कुमुद-चकोरा॥
उदित सदा अथइहि कबहूँ ना। घटिहि न जग-नभ दिन दिन दूना॥
कोक-तिलोक[4] प्रीति अति करिहों। प्रभुप्रतापु-रबि छबिहि न हरिहों॥
निसि दिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकेइ-करतब-राहू॥
पूरन रामु-सु-प्रेम पियूषा। गुरु अपमान दोष नहिं दूषा॥
रामभगत अब अमिय अघाहू। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहू[5]॥
भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल-सु-मंगल-खानी॥
दसरथ गुन-गन बरनि न जाहीं। अधिकु कहा जेहि सम जग नाहीं॥
दो०—जासु सनेह-सकोच-बस, राम प्रगट भए आइ।
जे हरि हिय-नयननि[6] कबहुँ, निरखे नाहिं अघाइ॥२१०॥

---

१ भक्तों के कुटुम्ब का पालन करने वाले २ दोष ३ नया उज्ज्वल चंद्रमा ४ तीनों लोकरूपी चक्रवाक ५ पृथ्वी पर ६ हृदय के नेत्र अर्थात् ध्यान में।

†जिस प्रकार गणेश जी सिद्धि के दाता हैं उसी प्रकार यह समय राम की भक्ति की सिद्धि देने के लिये हमको हुआ।

*यहाँ भरत यश उपमेय में चन्द्रमा उपमान से अभेद आरोप करके भी विशेषता दिखाई है साधारण चन्द्र उदय अस्त होता है—घटता बढ़ता है पर भरत के यश रूप नव विधु में यह दोष नहीं—चन्द्र को कोक नहीं चाहते—पर यश-चन्द्र को तिलोक चाहते हैं। रवि चन्द्र को अपहरण करता है परन्तु प्रभु-प्रताप रवि यश-चन्द्रश्री नहीं हरता। चन्द्र को राहु ग्रसता है, पर यश चन्द्र को कैकेई-करतब राहु नहीं ग्रस पाता—इसी प्रकार यश चन्द्र गुरु अपमानसे दूषित नहीं है—और वसुधा पर ही उसने सुधा सुलभ कर दिया है—यहाँ पर अभेद रूपक और व्यति-रेक अलंकार का संकर है। (देखो अलंकार प्रबोध

कीरति बिधु तुम्ह कीन्हि अनूपा । जहँ बस राम प्रेम-मृग-रूपा* ॥
तात गलानि करहु जिय जाएँ । डरहु दरिद्रहि पारस पाएँ ॥
सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं । उदासीन तापस बन रहहीं ॥
सब साधन[1] कर सुलभ सुहावा । लषन-राम-सिय-दरसनु पावा ॥
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा । सहित प्रयाग सुभाग हमारा ॥
भरत धन्य तुम्ह जग जसु जयेऊ । कहि अस प्रेम-मगन मुनि भयेऊ ॥
सुनि मुनिबचन सभासद हरषे । साधु सराहिं सुमन सुर बरषे ॥
धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा । सुनि सुनि भरत मगन अनुरागा ॥
दो०—पुलकगात हिय राम सिय, सजल सरोरुह नयन ।
करि प्रनाम मुनिमंडिलिहि, बोले गदगद बयन ॥२११॥
मुनिसमाजु अरु तीरथराजू । साँचिहु सपथ अघाइ अकाजू ॥
एहि थल जौं कछु कहिअ बनाई । एहि सम अधिक न अघ अधमाई[2]
तुम्ह सरवग्य[3] कहउँ सतिभाऊ । उर-अंतर-जामी रघुराऊ ॥
मोहि न मातु करतब कर सोचू । नहिं दुख जिय जग जानहि पोचू[4]
नाहिंन डरु बिगरहिं परलोकू । पितुहु मरन कर मोहि न सोकू ॥
सुकृत सुजस भरि भुवन सुहाए । लछिमन-राम-सरिस सुत पाए ॥
रामबिरह तजि तन छनभंगू[5] । भूप सोच कर कवन प्रसंगू[6] ॥
राम-लषन सिय बिनु पग पनहीं । करि मुनिवेष फिरहिं बन बनहीं ॥
दो० - अजिन[7] बसन, फल असन, महि सयन डासि कुस पात ।
बसि तरुतर नित सहत हिम, आतप[8] बरषा बात ॥२१२॥
एहि दुखदाह दहइ दिन छाती । भूख न बासर नींद न राती ॥
एहि कुरोग करि औषधि नाहीं । सोधेउ[9] सकल बिस्व मनमाहीं ॥

---

* यहाँ भरत कीर्ति रामप्रेम रूप उपमेय और विधु एवं मृगरूप उपमानों में अभेद दिखाने के कारण रूपकालंकार है ।

१ व्रत नियम संयम आदि २ नीचता ३ सब जानने वाले ४ बुरा ५ नाशवान ६ चरचा ७ मृगचर्म ८ घाम ९ खोजा ।

मातु कुमत[१] बढ़ई अघमूला । तेहि हमार हित कीन्ह बसूला ॥
कलि-कुकाठ[२] करि कीन्ह कुजंत्रू[३] । गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू ॥
मोहिलगि यह कुठाट[४] तेहि ठाटा[५] । घालेसि[६] सब जग बारह-बाटा[७] ॥
मिटइ कुजोग[८] राम फिरि आए । बसहि अवध नहिं आन उपाए ॥
भरतबचन सुनि मुनि सुख पाई । सबहि कीन्हि बहु भाँति बड़ाई ।
तात करहु जनि सोचु बिसेखी । सब दुखु मिटिहि रामपग देखी ॥

दो०—करि प्रबोध मुनिबर कहेउ, अतिथि[९] प्रेमप्रिय होहु ।
कंद मूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु ॥२१३ ।

सुनि मुनि बचन भरत हिय सोचू । भयेउ कुअवसर कठिन सँकोचू ।
जानि गरुइ[१०] गुर गिरा बहोरी । चरन बंदि बोले कर जोरी ॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा । परम धरम यहु नाथ हमारा ॥
भरत बचन मुनिवर मन भाये सुचिसेवक सिष[११] निकटबुलाए ॥
चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई । कंद मूल फल आनहु जाई ॥
भलेहिनाथ कहि तिन्ह सिर नाए । प्रमुदित निज निज काज सिधाए ॥
मुनिहि सोचु पाहुन बड़ नेवता । तसि पूजा चाहिअ जस देवता ॥
सुनिरिधिसिधिअनिमादिक आईं । आयसु होइ सो करहि गोसाईं ॥

दो०—रामबिरह ब्याकुल भरतु, सानुज सहित समाज ।
पहुनाई करि हरहु स्रम, कहा मुदित मुनि राज । २१४ ॥

रिधिसिधि सिर धरि मुनिवर बानी । बड़ भागिन आपुहि अनुमानी ॥
कहहिं परसपर सिधि समुदाई । अतुलित[१२] अतिथिराम लघुभाई ॥
मुनिपद बंद करिअ सोइ आजू । होइ सुखी सब राज समाजू ॥
अस कहि रचेउ रुचिर गृहनाना । जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना ॥

---

१ माता की बुरी सम्मति २ पाप रूपी बुरे काठ (बबूल) का ३ तंत्र शास्त्र का प्रयोग या कोल्हू ४ कुयोग ५ सजाया ६ नष्ट किया ७ तितर बितर ८ बुरा संयोग ९ मेहमान १० भारी (मानने योग्य) ११ शिष्य १२ अतोल ।

भोग बिभूति[1] भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहिं अमर[2] अभिलाखे॥
दासी दास साजु सब लीन्हे। जोगवत रहहिं मनहिं मनु दीन्हे॥
सबसमाजुसजि सिधि पलमाँहीं। जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाहीं॥
प्रथमहिं बास दिए सब केही। सुंदर सुखद जथारुचि जेही॥

दो०—बहुरि सपरिजन भरत कहँ, रिषि अस आयसु दीन्ह।
बिधि-बिसमय-दायकु बिभव, मुनिबर तपबल कीन्ह॥२१५॥

मुनि प्रभाउ जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति[3] लोका॥
सुख समाजु नहिं जाइ बखानी। देखत बिरति[4] बिसारहिं ग्यानी॥
आसन सयन सुबसन बिताना। बन बाटिका बिहँग मृग नाना॥
सुरभि[5] फूल फल अमिय समाना। बिमल जलासय[6] बिबिध बिधाना॥
असन पानसुचि अमिय अमी[7] से। देखि लोक सकुचात जमी[8] से॥
सुरसुरभी[9] सुरतरु सबही के। लखि अभिलाष सुरेस सची के[10]॥
रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी॥
स्रक[11] चंदन बनितादिक भोगा। देखि हरष बिसमयबस लोगा॥

दो०—संपति चकई भरतु चक, मुनिआयसु खेलवार[12] ॥॥
तेहि निसि आस्रमपींजरा, राखे भा भिनुसार॥२१६॥

कीन्ह निमज्जनु तीरथ राजा। नाइ मुनिहिं सिरु सहित समाजा॥
रिषि आयसु असीस सिर राखी। करि दंडवत बिनय बहु भाखी॥
पथ-गति-कुसल[13] साथसब लीन्हे चले चित्रकूटहिं चितु दीन्हे॥
रामसखा कर दीन्हे लागू[14]। चलत देह धरि जनु अनुरागू॥
नहिं पदत्रान सीस नहिं छाया। प्रेमु नेमु ब्रत धरमु अमाया[15]।

---

१ वैभव २ देवता ३ लोकपाल ४ वैराग्य ५ सुगंध ६ तालाब ७ अमृत के समान ८ संयमी, संन्यासी ९ कामधेनु १० इन्द्राणी ११ फूल माला १२ बहेलिया १३ पेचीदा रास्तों के जानने वाले १४ साथी १५ निष्कपट।

† देखो गूढ़ार्थ। ॥ परंपरितरूपक।

लखन-राम-सिय-पंथ-कहानी । पूछत सखहि कहत मृदुबानी ॥
राम-बास-थल-बिटप बिलोकें । उर अनुराग रहत नहिं रोकें ॥
देखि दसा सुर बरसहिं फूला । भइ मृदु महि मगु मंगल-मूला ॥
दो०—किए जाहिं छाया जलद, सुखद बहै बर बात ।
तस मगु भयेउ न राम कहँ जस भा भरतहिं जात ॥२१७॥
जड़ चेतन मग जीव घनेरे । जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे ॥
ते सब भए परम पद-जोगू । भरतदरस मेटा भवरोगू[१] ॥
एहि बड़ि बात भरत कइ नाहीं । सुमिरत जिनहिं रामु मनमाहीं ॥
बारक[२] राम कहत जग जेऊ । होत तरन-तारन[३] नर तेऊ ॥
भरतु राम प्रिय पुनि लघुभ्राता । कस न होइ मगु मंगल दाता ॥
सिद्ध साधु मुनिवर अस कहहीं । भरतहिं निरखि हरषु हिय लहहीं ॥
†देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू । जगु भल भलेहि, पोच कहुँ पोचू ॥
गुर सन कहेउ करिअ प्रभु सोई । रामहि भरतहि भेंट न होई ॥
दो०—राम सँकोची प्रेम बस भरत सुप्रेम-पयोधि ।
बनी बात बिगरन चहित, करिअ जतनु छलु सोधि ।२१८।
बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने । सहस-नयन[४] बिनु लोचन जाने ॥
कह गुरु बादि छोभु छलु छाँड़ू । इहाँ कपट कर होइहि भाँड़ू[५] ॥
माया पति-सेवक सन माया । करइ त उलटि परइ सुरराया ॥
तब[६] कछु कीन्ह रामरुख जानी । अब कुचालि करि होइहि हानी ॥
सुनु सुरेस रघुनाथ-सुभाऊ । निज अपराध रिसाहिं न काऊ ॥
जो अपराध भगत कर करई । राम-रोष-पावक सो जरई ॥
लोकहु बेद बिदित इतिहासा । एह महिमा जानहिं दुरबासा❀ ॥

१ आवागमन २ एक बार ३ स्वयं तरने वाले और दूसरों को तारने वाले ४ इन्द्र (बहु०) ५ भेद खुल जायगा ६ कुबड़ी को बहकाने के समय।

† विशेष की सामान्य से पुष्टि (अर्थान्तर न्यास अलंकार)

❀ राजा अम्बरीष एकादशी-व्रत के पीछे ब्राह्मण भोजन करवा कर पारण करते थे। इन्होंने एक बार दुर्वासा को न्योता दिया। वह

भरतसरिस को राम सनेही। जगु जप राम, राम जप जेही॥
दो०—मनहुँ न आनिअ अमरपति, रघुबर-भगत-अकाजु।
अजसु लोक, परलोक दुख, दिन दिन सोकसमाजु २१९
सुनु सुरेस! उपदेसु हमारा। रामहिं सेवक परम पियारा॥
मानत सुख सेवक-सेवकाई। सेवकबैर बैरु अधिकाई
जद्यपि सम, नहिं राग न रोषू। गहहिं न पापपूनु गुन दोषू।
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥
†तदपि करहिं सम-बिषम-बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥
अगुन[1] अलेख[2] अमान[3] एकरस[4]। रामु सगुन[5] भए भगत प्रेम बस॥
राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद-पुरान साधु सुर साखी॥
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत-पद-प्रीति सुहाई॥
दो०—राम-भगत पर हित-निरत[6], परदुख दुखी दयाल।
भगतसिरोमनि भरत तें, जनि डरपहु सुरपाल॥ २२०॥
सत्यसंध प्रभु सुर-हित-कारी। भरत राम-आयसु-अनुसारी॥
स्वारथबिबस बिकल तुम्ह होहू। भरतु दोषु नहिं राउर मोहू[7]॥
सुनि सुरबर सुर-गुर-बर-बानी। भा प्रमोदु मन मिटी गलानी॥

---

स्नानादि से देर में आये, इधर राजा ने द्वादशी बीती जान ब्राह्मणों की सलाह से पारण कर लिया। ऋषि ने यह जान क्रोध कर जटा से राक्षसी पैदा की। वह जैसे ही राजा को खाने को दौड़ी वैसे ही चक्रसुदर्शन ने उसे मार डाला और ऋषि का पीछा किया। उनको किसी देवता ने शरण न दी। अन्त में राजा ने ही चक्रसुदर्शन को निवारण कर ऋषि को बचाया और भोजन कराके आप खाया। इस झगड़े में एक वर्ष का समय लगा।

† भक्तों की इच्छा के अनुसार सम विषम बिहार अर्थात् ऊपर के नियमों का उल्लंघन कर देते हैं।

१ तीनों गुणों से रहित २ देखने में न आवे ३ मान रहित ४ एक से ५ साकार ६ परोपकार में लगे हुए ७ अज्ञान।

बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ । लगे सराहन भरत सुभाऊ ॥
एहि विधि भरत चले मग जाहीं । दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं ॥
जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा । उमगत[1] प्रेम मनहुँ चहुँ पासा ॥
द्रवहिं[2] बचन सुनि कुलिस पखाना[3] पुरजन-प्रेम न जाइ बखाना ॥
बीच बास करि जमुनहिं आए । निरखि नीरु लोचन जल छाए ॥
दो०—रघु-बर-बरन[4] बिलोकि बर, बारि समेत समाज ।
होत मगन बारिधि-बिरह[5], चढ़े बिबेक-जहाज ॥२२१॥
जमुनतीर तेहि दिन करि बासू । भएउ समयसम सबहि सुपासू[6] ॥
रातिहिं घाट घाट की तरनी । आईं अगनित जाहिं न बरनी ॥
प्रात पार भये एकहि खेवा । तोषे राम सखा की सेवा ॥
चले नहाइ नदिहि सिरु नाई । साथ निषादनाथ दोउ भाई ॥
आगें मुनि-बर बाहन आछे । राज समाज जाइ सब पाछे ॥
तेहि पाछे दोउ बन्धु पयादे । भूषन बसन बेष सुठि सादे ॥
सेवक सुहृद सचिवसुत साथा । सुमिरत लषनु सीय रघुनाथा ॥
जहँ जहँ राम-बास बिस्रामा । तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा ॥
दो०—मगबासी नरनारि सुनि, धाम काज, तजि धाइ ।
देखि सरूप सनेह बस मुदित जनमफलु पाइ ॥२२२॥
कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं । राम लषनु सखि होहिं कि नाहीं ॥
बय बपु[7] बरन रूपु सोइ आली । सीलु सनेहु सरिस सम चाली ॥
बेषु न सो, सखि ! सीय न संगा । आगे अनी[8] चली चतुरंगा ॥
नहिं प्रसुन्नमुख मानस[9] खेदा । सखि संदेह होइ एहि भेदा ॥
तासु तरक तियगन मनमानी । कहहिं सकल 'तोहि सम न सयानी' ॥
तेहि सराहि बानीफुर पूजी । बोली मधुर बचन तिय दूजी ॥
कहि सप्रेम सब कथा प्रसंगू । जेहि बिधि राम-राज-रस-भंगू[10] ॥

---

१ उमड़ता है २ पिघलते हैं ३ (पाषाण) पत्थर ४ राम के रंग का (नीला) ५ वियोग रूपी समुद्र में ६ सुविधा ७ शरीर ८ सेना ९ मानसिक १० राम के राज्य तिलक के आनन्द का बिगाड़ ।

भरतहि बहुरि सराहन लागी। सील सनेह सुभाय सुभागी॥
दो० - चलत पयादे खात फल, पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहिं, भरतसरिस को आजु ॥२२३॥
भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख-दूषन हरनू॥
जो कछु कहब थोर सखि सोई। रामबंधु अस काहे न होई॥
हम सब सानुज भरतहिं देखे। भइन्ह धन्य जुबतीजन लेखे[1]॥
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं। कैकेइ-जननि-जोगु सुत नाहीं॥
कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन। बिधि सबु कीन्ह हमहिं जो दाहिन।
कहँ हम लोक-बेद-बिधि हीनी। लघुतिय कुल-करतूति मलीनी॥
बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा। कहँ एह दरसु पुन्य परिनामा॥
अस अनंदु अचिरिजु प्रति ग्रामा। जनु मरुभूमि[2] कलपतरु जामा॥
दो०—भरत दरसु देखत खुलेउ, मग लोगन्ह कर भागु।
जनु सिंघल बासिन्ह भयेउ, बिधि बस सुलभ प्रयागु॥२२४॥
निज गुन-सहित राम गुन गाथा। सुनत जाँहिं सुमिरत रघुनाथा॥
तीरथ मुनि आस्रम सुरधामा। निरखि[3] निमज्जहिं करहिं प्रनामा॥
मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैषानस बटु जती उदासी[5]॥
करि प्रनामु पूछहिं जेहि तेही। केहि बन लषनु राम बैदेही॥
ते प्रभु समाचार सब कहहीं। भरतहिं देखि जनम-फलु लहहीं॥
जे जन कहहिं "कुसल" हम देखे। ते प्रिय राम लषन-सम-लेखे॥
एहि बिधि बूझत सबहिं सुबानी। सुनत राम बन-बास-कहानी॥
दो०—तेहि बासर बसि प्रात ही, चले सुमिरि रघुनाथ।
रामदरस की लालसा, भरत सरिस सब साथ॥२२५॥
मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू॥
भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलहहिं रामु मिटिहि दुखदाहू॥

---

१ अन्य स्त्रियों के हिसाब में २ मारवाड़, मरुस्थल ३ देख कर स्नान करते हैं ४ अच्छी तरह ५ संसार में जिसका कोई मित्र शत्रु न हो।

करत मनोरथ जस जिय जाके। जाहिं सनेहसुरा[1] सब छाके ॥
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिह्वल बचन[2] पेमबस बोलहिं ॥
राम सखा तेहि समय देखावा। सैलसिरोमनि सहज सुहावा ॥
जासु समीप सरित-पय-तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा ॥
देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा ॥
पेम मगन अस राज समाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू ॥

दो०—भरत प्रेमु तेहि समय जस, तस कहि सकइ न सेषु।
*कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु, अहमम-मलिन-जनेषु॥२२६

सकल सनेह सिथिल रघुबर कें। गए कोस दुइ दिनकर ढरकें[3] ॥
जल थल देखि बसे, निसि बीते। कीन्ह गवनु रघु-नाथ पिरीते ॥
जहाँ रामु रजनी अवसेखा[4]। जागे सीय सपन अस देखा ॥
सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग-ताप तन-ताए[5] ॥
सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखीं सासु आन अनुहारी[6] ॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोच बस सोच बिमोचन ॥
लषन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई ॥
अस कहि बन्धु समेत नहाने। पूजि पुरारि[7] साधु सनमाने ॥

छंद—सनमानि सुर मुनि बंद बैठे उतर दिसि देखत भये।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे सकल प्रभु आस्रम गये ॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे ॥

सो०—सुनत सुमंगल बैन, मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह-जल ॥२२७॥

---

१ स्नेह रूपी मद २ लड़खड़ाती बातें ३ दिन ढले ४ थोड़ी रात रहे ५ तपे हुए ६ और ही भाँति ७ (पुर = त्रिपुर + अरि = बैरी) महादेव।
*कवि को ऐसा दुस्तर है जैसा कि अहंकार से मलिन मनुष्यों को ब्रह्म सुख।

बहुरि सोच बस भे सियरवनू । कारन कवन भरत आगमनू ॥
एक आइ अस कहा बहोरी । सेन संग चतुरंग न थोरी ॥
सो सुनि रामहिं भा अति सोचू । इत पितुबच उत बंधु संकोचू ॥
भरत सुभाउ समझ मन माहीं । प्रभुचित हित थिति[1] पावत नाहीं ॥
समाधान तब भा एह जाने । भरतु कहे महँ साधु सयाने ॥
लषनु लखेउ प्रभु-हृदय खँभारू[2] । कहत समय सम नीति बिचारू ॥
बिनु पूँछे कछु कहउँ गोसाईं । सेवकुसमय न ढीठ ढिठाई ॥
तुम्ह सरबग्य सिरोमनि स्वामी । आपनि समुझि कहउँ अनुगामी ।
दो०—नाथ सुहृद सुठि सरल, चित सील-सनेह-निधान ।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय जानिअ आपु समान ॥२२८॥
बिषयी जीव पाइ प्रभुताई । मूढ़ मोह बस होहिं जनाई[3] ।
भरतु नीतिरत साधु सुजाना । प्रभु-पद-प्रेम सकल जगु जाना ॥
तेऊ आज राजपदु पाई । चले धरम मरजाद मेटाई ॥
कुटिल कुबंध कु अवसरु ताकी । जानि राम बनबास एकाकी[4] ॥
करि कुमंत्रु[5] मन साजि समाजू । आए करइ अकंटक[6] राजू ॥
कोटि प्रकार कलपि[7] कुटिलाई । आए दलु बटोरि दोउ भाई ॥
जौं जिय होति न कपट कुचाली । केहि सोहाति रथ-बाजि गजाली[8] ।
भरतहि दोष देइ को जाए[9] । जग बौराइ राजपद पाए ॥
दो०—*ससि गुर-तिय-गामी, नहुषु चढ़ेउ भूमि-सुर-जान ।
लोकबेद तें बिमुख भा अधम न †बेन समान ॥२२९॥

---

१ (स्थिति) २ खलबली ३ अपने को दिखाते हैं अर्थात् घमंड करते हैं ४ अकेला, असहाय ५ षड्यन्त्र ६ निर्विघ्न ७सोचकर ८हाथियों का समूह ९व्यर्थ।

*चन्द्रमा ने त्रिलोकी को जीतकर राजसूय यज्ञ किया और अपनी गुरुपत्नी को हर लिया। देवताओं ने भी चन्द्रमा का ही पक्ष लिया। तब ब्रह्मा ने बीच में पड़ तारा बृहस्पति को दिला दी और चन्द्र का पुत्र बुध, जो तारा से पैदा था उसी के यहाँ रहा। बुध के पुत्र पुरुरवा से चन्द्रवंशी राजाओं की उत्पत्ति हुई।

†स्वायम्भू मनु के वंशजों में राजा अंग का पुत्र बेनु जन्म से ही दुष्ट-

‡सहसबाहु ×सुरनाथ +त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू ॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपुरिन रंच न राखब काहू ॥
एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे राम जानि असहाई ॥

और उपद्रवी था। पिता दुखी हो वन को चले गये। वह राज्य पा, मदान्ध हो गया, ऋषि मुनि आदि से हटात् ईश्वरोपासना छुड़ाकर अपनी पूजा कराने को बाधित करने लगा। मुनियों ने समझाया पर ध्यान नहीं दिया, अन्त में उन्होंने भस्म कर दिया।

‡ सोमवंशी राजा कृतवीर्य के पुत्र सहस्रबाहु अर्जुन ने दत्तात्रेय की सेवा कर सहस्र हाथ पाये थे। इसकी राजधानी महिष्मती नर्वदा के किनारे पर थी। एक समय इसने रावण को बाँध लिया था।

एक समय यमदग्नि ने राजा सहस्रबाहु का—जो शिकार को आया हुआ था ससैन्य स्वागत किया। ऋषि का वैभव देख राजा आश्चर्य में आगया। यह सब कामधेनु का पराक्रम है ऐसा जान कर उसे माँगने लगा। ऋषि के न देने पर उन्हें मार डाला। कामधेनु उससे छूट कर स्वर्ग चली गई और इधर ऋषि के पुत्र परशुराम ने युद्ध में सहस्रबाहु को मार कर पृथ्वी को इक्कीसबार क्षत्रिय-रहित कर दिया।

× एक बार इन्द्र ऐरावत हाथी पर बैठ कर जा रहे थे। राह में दुर्वासा ऋषि ने स्वर्गीय पुष्पों की माला दी। उन्होंने अभिमान वश हाथी की गर्दन पर रखदी। सुगंध में मस्त हाथी ने उसको गिरा दिया। इस पर दुर्वासा बड़े अप्रसन्न हुए और इन्द्र को शाप दिया कि 'तुम्हारा ऐश्वर्य नाश होवे' (२) ब्रजवासी इन्द्र उपासक थे। भगवान् कृष्ण ने रोक दिया! इस पर इन्द्र ने रुष्ट होकर सात दिन घोर वर्षा कर ब्रज बहा देना चाहा। परन्तु भगवान् कृष्ण ने गोवर्द्धन को धारण कर ब्रज की रक्षा की। अतः इन्द्र को उनके अधीन होना पड़ा।

+ सूर्यवंशी राजा निबन्धन का ज्येष्ठ पुत्र त्रिशंकु बचपन से ही दुष्ट था। यह ब्राह्मणों की विवाहिता स्त्रियों को हर लेता था। राजा ने दुखी हो इसको राज्य से निकाल दिया तथा आप भी राज्य छोड़ तपस्या को चले गये। सूने राज्य में बहुत उत्पात होते देख राजा ने बन से आकर

समुझि परिहि सोउ आजु बिसेखी। समर[१] सरोष राममुख पेखी[२]॥
इतना कहत नीतिरस[३] भूला। रन-रस बिटप[४] पुलक मिस फूला॥
प्रभुपद बंदि सीसरज राखी। बोले सत्य सहज बलु भाखी॥
अनुचित नाथ न जानब मोरा। भरत हमहिं उपचार[५] न थोरा॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मन मारें। नाथ साथ धनु हाथ हमारें॥
दोहा०—छत्रिजाति रघु-कुल-जनमु, रामअनुज जगु जान।
लातहुँ मारें चढ़ति सिर, नीच को धूरि समान॥२३०॥
उठि कर जोरि रजायसु माँगा। मनहु बीररस सोवत जागा॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि माथा[६]। साजि सरासनु सायकु[७] हाथा॥
आजु रामसेवक जसु लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ॥
रामनिरादर कर फलु पाई। सोवहु समरसेज दोउ भाई॥
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिलि आजू॥
जिमि करि-निकर[८] दलइ[९] मृगराजू। लेइ लपेटि लवा[१०] जिमि बाजू॥
तैसेहि भरतहि सेनसमेता। सानुज निदरि निपातउ[११] खेता॥
जौं सहाय कर संकर आई। तउ मारौं रन रामदोहाई॥
दोहा—अतिसरोष भाषे लषनु, लखि सुनिसपथ[१२] प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति, चाहति भभरि भंगान[१३]॥२३१॥

---

त्रिशंकु को राजा बनाया। राजा होने से पहले त्रिशंकु ने विश्वामित्र के बालबच्चों की बड़ी रक्षा की थी। इससे धोखे से वशिष्ठजी की गाय मारी गई थी। इस पर तीन भारी पाप होने से (१) ब्राह्मण पत्नी हरण (२) पिता का अपमान (३) गाय का मारना; इसका नाम त्रिशंकु पड़ा। त्रिशंकु ने सदेह स्वर्ग जाना चाहा। ऋषि के अनुचित बताने पर उनका अनादर किया। उन्होंने शाप से चाण्डाल बना दिया। विश्वामित्र ने अपने तप-बल से इसको स्वर्ग भेजा। देवों ने उसे ढकेल दिया। इस पर विश्वामित्र ने बीच ही लटका रक्खा। इसकी लार से कर्मनाशा नदी बनी।

१ लड़ाई २ देखकर ३ उचितानुचित का ध्यान न रहा ४ वीर रसरूपी वृक्ष ५ छेड़छाड़ ६ तरकस ७ तीर ८ हाथियों के झुंड ९ नष्ट करता है १० एक छोटी चिड़िया ११ नष्ट कर डालूँ १२ सौगंध १३ भड़भड़ा कर, डरकर भागना।

जगु भय मगन[1] गगन भइ बानी । लषन-बाहु-बल बिपुल[2] बखानी ॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा । को कहि सकइ को जाननिहारा ॥
अनुचित उचित काज कछु होऊ । समुझि करिअ भल कह सब कोऊ ॥
सहसा करि पाछे पछिताहीं । कहहिं बेद बुध 'ते बुध नाहीं' ॥
सुनि सुर बचन लषन सकुचाने । राम सीय सादर सनमाने ॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई । सब तें कठिन राजमदु भाई ॥
जो अँचवत[3] माँतहिं[4] नृप तेई । नाहिंन साधु-सभा जेहि सेई ॥
सुनहु लषन भल भरत सरीसा । बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥

दो०—भरतहि होइ न राजुमदु, बिधि हरि-हर-पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि[5], छीरसिंधु बिनसाइ[6] ॥२३२॥

तिमिर[7] तरुनतरनिहि[8] मकु गिलई[9] । गगन[10] मगन मकु मेघहि[11] मिलई ॥
*गोपद जल बूड़हिं घटजोनी[12] । सहज छमा बरु छाड़इ छोनी[13] ॥
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई । होइ न नृप मद भरतहिं भाई ॥
लषन तुम्हार सपथ पितु आना । सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ॥
सुगुन षीरु अवगुन जल ताता । मिलइ रचइ परपंच[14] बिधाता ॥
भरत हंस रबि बंस तड़ागा[15] । जनम कीन्ह गुन-दोष बिभागा ॥
गहि गुन पन तजि अवगुन बारी । निज जस जगत कीन्ह उजियारी ॥
कहत भरत-गुन-सीलु-सुभाऊ । प्रेमपयोधि[16] मगन रघुराऊ ॥

दो०—सुनि रघुबर बानी बिबुध, देखि भरत पर हेतु ।
सकल सराहत राम सों, प्रभु को कृपानिकेतु[17] ॥२३३॥

---

१ भयभीत २ अथाह ३ पीता है ४ पागल ५ खटाई की बूँद ६ नष्ट करती है ७ अँधेरा ८ दोपहर के सूर्य को ९ शायद निगल जाय १० आकाश में ११ बादल १२ अगस्तमुनि १३ पृथ्वी १४ संसार १५ तालाब १६ प्रेम का समुद्र १७ कृपा का घर ।

* चाहे सागर को तीन चुल्लू में पीने वाले अगस्त मुनि थोड़े से जल में डूब जावें ।

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम-धुर-धरनि-धरतको॥
कबि-कुल-अगम भरत-गुन-गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा॥
लषन राम सिय सुनि सुरबानी। अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी॥
इहाँ भरतु सब सहित सहाए[1]। मंदाकिनी पुनीत नहाए॥
सरितसमीप राखि सब लोगा। माँगि मातु गुर-सचिव नियोगा[2]॥
चले भरत जहँ सियरघुराई। साथ निषादनाथ लघुभाई॥
समुझि मातुकरतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मन माहीं॥
राम-लखन-सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥

दो०—मातु मते महुँ मानि मोहि, जो कछु कहहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर॥२३४॥

जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी। जौं सनमानहिं सेवक मानी॥
मोरे सरन राम की पनहीं[3]। राम सुस्वामि दोष सब जनहीं[4]॥
जग जसभाजन चातक मीना। नेम प्रेम निज[5] निपुन नबीना[6]॥
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेह सिथिल सब गाता॥
फेरति मनहिं मातुकृत खोरी। चलत भगतिबल धीरजधोरी॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल[7] पाऊ॥
भरतदसा तेहि अवसर कैसी। जलप्रबाह जल-अलि गति[8] जैसी॥
देखि भरत कर सोचु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥

दो०—लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटिहि सोच होइहि हरषु पुनि परिनाम बिषादु[9]॥२३५॥

सेवक बचन सत्य सब जाने। आस्रम निकट जाइ नियराने[10]॥
भरत दीख बन-सैल-समाजू। मुदित छुधित[11] जनु पाइ सुनाजू॥

---

१ साथी, सेवा २ आज्ञा ३ जूता (उपानह) ४ सेवक का अर्थात् भरत कहते हैं 'मेरा' ५ अपना ६ नया ७ जल्दी ८ पानी के भौंरे की दशा ९ दुःख १० पास आये ११ भूखा।

ईति भीति[1] जनु प्रजा दुखारी । त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह भारी[2] ॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी । होहि भरतगति तेहि अनुहारी ॥
रामबास बनसंपति भ्राजा[3] । सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा* ॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू । बिपिन[4] सुहावन पावन देसू ॥
भट[5] जम-नियम सैल रजधानी । सांति सुमति सुचि सुंदरि रानी ॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ । रामचरन-आस्रित[6] चित चाऊ[7] ॥

दो०—जीति मोह-महिपालु-दल[8] सहित बिबेक भुआलु ।
करत अकंटक[9] राजु पुर सुख संपदा सुकालु ॥२३६ ।

बन प्रदेस मुनिबास घनेरे । जनु पुर नगर गाउँगन खेरे[10] ॥
बिपुल[11] बिचित्रबिहंग मृगनाना । प्रजासमाजु न जाइ बखाना ॥
खँगहा[12] करिहरि[13] बाघबराहा[14] देखिमहिष[15] वृष[16] साजुसराहा ॥
बयरु बिहाय चरहिं एक संगा । जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥
झरना झरहिं मत्तगज गाजहिं । मनहुँ निसान बिबिध बिधिबाजहिं ॥
चक चकोर चातकसुकपिकगन । कूजत मंजु मराल मुदितमन ॥
अलिगन गावत नाचत मोरा । जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा ॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला । सबु समाजु मुद-मंगल-मूला ॥

दो०—रामसैल सोभा निरखि, भरतु हृदय अतिप्रेमु ।
तापस तपफल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमु ॥२३७॥

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई । कहेउ भरत सन भुजा उठाई ॥
नाथ देखियहि बिटपबिसाला । पाकरि[17] जंबु[18] रसाल[19] तमाला[20] ॥

---

१ ईति का डर, ईति ६ हैं—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूसक, टीड़ी, शुक और समीपवर्ती राजाओं की चढ़ाई । २ भारी ग्रहदशा ३ शोभित है ४ जंगल ५ वीर ६ सहारे से ७ उत्साह है ८ मोहरूपी राजा की सेना ९ बेखटके १० पुराने बसे हुए गाँव ११ बहुत ही १२ गेंडा १३ हाथी और सिंह १४ सुअर १५ भैंस १६ बैल १७ पापरी १८ जामुन १९ आम २० तमाल का पेड़; आबनूस ।

* उत्प्रेक्षा में सावयव अभेद रूपक ।

तिन्ह तरुबरन्ह मध्य बट[1] सोहा। मंजु बिसाल देखि मन मोहा॥
नील सघन[2] पल्लव फल लाला। अबिरल छाँह सुखद सब काला[3]॥
मानहुँ तिमिर-अरुन-मय रासी। बिरची बिधि सकेलि सुखमासी[4]॥
ए तरु सरितसमीप गोसाईं। रघुबर परनकुटी जहँ छाईं॥
तुलसी तरुबर बिबिधि सुहाए। कहुँ कहुँ सिय कहुँ लषन लगाए॥
बटछाया बेदिका बनाई। सिय निज-पानि-सरोज सुहाई॥

दो०—जहाँ बैठि मुनि-गन-सहित, नित सिय रामसुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब, आगम[5] निगम[6] पुरान॥२३८॥

सखाबचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥
करत प्रनामु चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥
हरषहिं निरखि राम पद अंका[7]। मानहुँ पारसु पायेउ रंका॥
रजसिर धरि हियनयनन्हिलावहिं। रघुबर-मिलन-सरिससुख-पावहिं
देखि भरतगति अकथ अतीवा[8]। प्रेममगन मृग खग जड़ जीवा।
सखहिं सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला॥
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर[9] सचर[10] चरअचरकरतको॥

दो०—प्रेम अमिअ मंदरु[11] बिरहु, भरत पयोधि गँभीर[12]।
मथि प्रगटेउ सुर-साधु हित, कृपासिंधु रघुबीर॥ २३९॥

सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लषन सघन बन ओटा।
भरत दीख प्रभु-आस्रम पावन। सकल-सु मंगल सदन सुहावन॥
करत प्रवेस मिटइ दुखदावा। जनु जोगी परमारथु पावा॥
देखे भरत लषन प्रभु आगें। पूछे बचन कहत अनुरागें॥
सीस जटा कटि मुनिपट बाँधे। तून कसे, कर सर, धनु काँधे॥

---

१ बरगद २ घना ३ सर्वदा रहने वाली ४ सुन्दरतासी ५ शास्त्र ६ वेद ७ निशान ८ अत्यन्त अकथनीय ९ स्थिर १० चलने वाले ११ मन्दराचल पर्वत १२ गहरा समुद्र।

बेदी पर मुनि-साधु-समाजू । सीयसहित राजत रघुराजू ।
बलकलबसन[1] जटिल[2] तनुस्यामा । जनु मुनिबेष कीन्ह रतिकामा ॥
कर-कमलनि धनुसायकु फेरत । जिय की जरनि हरत हँसि हेरत ॥
दो०—लसत मंजु-मुनि मण्डली, मध्य सीय रघुचंदु ।
ग्यानसभा जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानंदु ॥२४०॥
सानुज[3] सखा समेत मगन मन । बिसरे[4] हरष-सोकु-सुख-दुख-गन
पाहि[5] नाथ कहि पाहि गोसाईं । भूतल परे लुकुट[6] की नाईं ॥
बचन सप्रेम लषन पहिचाने । करत प्रनामु भरत जिय जाने ॥
बंधु सनेह सरस[7] एहि ओरा । इत साहिब-सेवा बरजोरा ॥
मिलि न जाइ नहिं गुदरत[8] बनई । सुकबि लषनमन की गत भनई[9] ॥
रहे राखि सेवा पर भारू । चढ़ी चंग[10] जनु खैंच खेलारू ॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा । भरत प्रनाम करत रघुनाथा ॥
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा । कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ॥
दो०—बरबस लिए उठाइ उर, लाए कृपानिधान ।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहिं अपान[11] ॥२४१॥
मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी । कबिकुल-अगम करम मन बानी ॥
परम-प्रेम पूरन दोउ भाई । मन बुधि चित अहमिति[12] बिसराई ॥
कहहु सुप्रेम प्रगट को करई । केहि छाया कबि-मति अनुसरई ॥
कबिहिं अरथ आखर[13] बलु-साँचा । अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा ॥
अगमसनेह भरत-रघुबर को । जहँ न जाइ मनु बिधि-हरि-हर को ॥
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती । बाजु सुराग कि गाँड़रताँती[14] ॥
मिलनि बिलोकि भरत-रघुबर की । सुरगन सभय धकधकी धरकी ॥

---

१ छाल के वस्त्र २ जटा रखाये हुए ३ स + अनुज, भाई के साथ ४ दूर होगये ५ रक्षा करो ६ लकड़ी ७ स + रस, रस युक्त, प्रेम ८ छोड़ते ९ कहता है १० पतंग ११ अपनपे को १२ (अहम् + इति) अहंकार १३ अक्षर १४ भेड़ (ऊन) की ताँत ।

समुझाए सुरगुर जड़ जागे[1] । बरषि प्रसून प्रसंसन लागे ।।

दो०—मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिं, केवट भेंटेउ राम ।
भूरि भाय भेंटे भरत, लछिमन करत प्रनाम ।।२४२।।

भेंटेउ लषन ललकि[2] लघु भाई । बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई ।।
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे । अभिमत आसिष पाइ अनंदे ।।
सानुज भरत उमगि अनुरागा । धरि सिर सिय-पद-पदुम-परागा।।
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए । सिर करकमल परसि बैठाए ।।
सीय असीस दीन्हि मन माहीं । मगन-सनेह देहसुधि नाहीं ।।
सब बिधि सानुकूल लखि सीता । भे निसोच उर अपडर[3] बीता ।।
कोउ कछु कहइ न कोउ कछु पूछा । प्रेम भरा मन निज-गति छूछा ।।
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि । जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि ।।

दो०—नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुरलोग ।
सेवक सेनप[4] सचिव[5] सब, आए बिकल-बियोग ।।२४३।।

सीलसिंधु सुनि गुरु आगवनू । सियसमीप राखे रिपुदवनू ।।
चले सबेग राम तेहि काला । धीर धरम-धुर दीनदयाला ।।
गुरुहि देखि सानुज अनुरागे । दंडप्रनाम करन प्रभु लागे ।।
मुनिबर धाइ लिए उर लाई । प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई ।।
प्रेम पुलकि केवट कहि नामू । कीन्ह दूर तें दंडप्रनामू ।।
रामसखा रिषि बरबस भेंटा । जनु महि लुठत[6] सनेह समेटा ।।
रघुपति भगति सुमंगल मूला । नभ सराहिं सुर बरषहिं फूला ।।
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं । बड़ बसिष्ठसम को जग माहीं ।।

दो०—जेहि लखि लषनहुँ तें अधिक, मिले मुदित मुनिराउ ।
सो सीता-पति-भजन को, प्रगट प्रताप-प्रभाउ ।।२४४।।

---

१ ज्ञान हुआ २ प्रेम के साथ जल्दी करके ३ अपने हृदय में डर पैदा होना ४ सेना + प = सेनापति ५ मंत्री ६ गिरे हुए ।

आरत लोग राम सबु जाना । करुनाकर सुजान भगवाना ॥
जो जेहि भाय रहा अभिलाखी । तेहि तेहि कै तसि तसि रुख[१] राखी॥
सानुज मिलि पल महँ सब काहू । कीन्ह दूरि दुखु-दारुन-दाहू ।
एहि बड़ि बात राम कै नाहीं । जिमि घट कोटि[२] एक रबि छाहीं
मिलि केवटहि उमगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा ॥
देखी राम दुखित महतारीं । जनु सुबेलि अवलीं[३] हिम[४] मारीं ॥
प्रथम राम भेंटी कैकेई । सरल सुभाय भगति-मति भेई ॥
पग परि कीन्ह प्रबोध बहोरी । काल करम बिधि सिर धरि खोरी[५]॥

दो०—भेंटी रघुबर मातु सब, करि प्रबोध परितोषु ।
अंब ईस आधीन जगु, काहु न देइअ दोषु ॥ २४५ ॥

गुर तिय-पद बंदे दुहुँ भाई । सहित बिप्रतिय जे सँग आई ॥
गंग-गौरि-सम सब सनमानी[६]। देहिं असीस मुदित मृदुबानी ॥
गहि पद लगे सुमित्रा अंका । जनु भेंटी संपति अति रंका ।
पुनि जननी-चरननि दोउ भ्राता । परे प्रेम-ब्याकुल सब गाता ॥
अति अनुराग अंब उर लाए । नयन सनेह-सलिल[७] अन्हवाए ॥
तेहि अवसर कर हरष बिषादू । किमि कबि कहइ मूक जिमि स्वादू ।
मिलि जननिहिं सानुज रघुराऊ । गुरुसन कहेउ कि धारिअ पाऊ ॥
पुरजन पाइ मुनीस-नियोगू[८] । जल थल तकि तकि उतरेउ लोगू ॥

दो०—महिसुर[९] मंत्री मातु गुरु, गने लोग लिये साथ ।
पावन आस्रम गवनु किए, भरत लषन रघुनाथ । २४६॥

सीय आइ मुनि-बर-पग लागी । उचित असीस लही मन मागी ॥
गुरुपतिनिहिं मुनि तियन्ह समेता। मिली प्रेम कहि जाइ न जेता ॥
बंदि बंदि पग सिय सबही के । आसिरबचन[१०] लहे प्रिय जी के॥

---

१ इच्छा २ करोड़ों घड़ों में ३ अच्छी बेलों की पाँति ४ बर्फ ५ दोष ६ आदर किया ७ स्नेहरूपी पानी ८ मुनि की आज्ञा ९ ब्राह्मण १० आशीर्वाद ।

सासु सकल जब सीय निहारी । मूँदे नयन सहमि सुकुमारी ॥
परी बधिक-बस[1] मनहुँ मराली[2] । काह कीन्ह करतार कुचाली ॥
तिन्हसियनिरखिनिपट[3] दुखपावा।सो सब सहिश्र जो दैव सहावा ॥
जनकसुता तब उर धरि धीरा । नील नलिन-लोयन[4] भरि नीरा[5] ॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई । तेहि अवसर करुना[6] महि छाई ॥
दो० —लागि लागि पग सबनि सिय, भेटति अति अनुराग ।
हृदय असीसहिं प्रेमबस, रहिअहु भरी सोहाग ॥२४७॥

बिकल सनेह सीय सब रानी । बैठन सबहिं कहेउ गुर ग्यानी॥
कहि जगगति मायिक[7] मुनिनाथा । कहे कछुक परमारथ[8] गाथा ॥
नृप कर सुर-पुर गवनु सुनावा । सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा ।
मरनहेतु निजनेहु बिचारी । भे अति बिकल धीर-धुर-धारी ॥
कुलिसकठोर[9] सुनत कटुबानी । बिलपत लषन सीय सब रानी॥
सोक बिकल अति सकल समाजू । मानहुँ राजु अकाजेउ[10] आजू ॥
मुनिबर बहुरि राम समुझाए । सहित समाज सुसरित नहाए ॥
ब्रतु निरंबु[11] तेहि दिन प्रभु कीन्हा।मुनिहु कहे जलु काहु न लीन्हा ॥
दो०—भोर भए रघुनन्दनहिं, जो मुनि आयसु दीन्ह ।
श्रद्धा[12] भगति-समेत प्रभु, सो सब सादर कीन्ह ॥२४८॥

करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी । भे पुनीत पातक-तम-तरनी[13] ॥
जासु नाम पावक अघतूला[14] । सुमिरत सकल-सु-मंगल-मूला ॥
सुद्ध सो भयेउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन[15] सुरसरि जस॥
सुद्ध भएँ दुइ बासर बीते । बोले गुरसन राम पिरीते ॥

---

१ बहेलिया के वश में २ हंसनी ३ बिलकुल ४ नीले कमल के समान नेत्र ५ (नीर) आँसू ६ शोक ७ माया संबंधी ८ मोक्ष की कथा ९ वज्र से भी कठोर १० मृत्यु ११ निर्जल व्रत १२ (श्रद्धा) आदरणीय प्रेम १३ पाप रूपी अन्धकार के लिये जो सूर्यरूप हैं १४ पाप रुई तुल्य हैं १५ बुलाना ।

नाथ लोग सब निपट दुखारी। कंद-मूल फल-अंबु-अहारी ॥
सानुज भरतु सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता॥
सब समेत पुर धारिअ पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ॥
बहुत कहेउँ सब कियेउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिअ गोसाईं॥

दोहा—धर्मसेतु करुनायतन, कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस, देखि लहहिं बिस्राम ॥२४६॥

राम बचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू॥
सुनि गुरुगिरा सु-मंगल-मूला। भयेउ मनहुँ मारुत अनुकूला॥
पावनि पय तिहुँ काल नहाहीं। जो बिलोकि अघ ओघ[1] नसाहीं॥
मंगलमूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि॥
राम-सैल बन देखत जाहीं। जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं॥
झरना झरहिं सुधासम बारी[2]। त्रि-बिधि-ताप-हर त्रिविध बयारी॥
बिटप बेलि तृन[3] अगनित जाती। फल प्रसून[4] पल्लव बहु भाँती॥
सुन्दर सिला सुखद तरु छाहीं। जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं॥

दोहा—सरनि सरोरुह जल-बिहँग[5] कूजत गुंजत भृंग।
बैर बिगत बिहरत बिपिन मृग बिहंग बहुरंग ॥२५०॥

कोल किरात भिल्ल बनवासी। मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधासी॥
भरि भरि परनपुटी[6] रचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी[7]॥
सबहिं देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वादु भेदु गुन नामा॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं॥
कहहिं सनेह-मगन मृदुबानी। मानत साधु प्रेम पहिचानी॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु रामप्रसादा॥
हमहिं अगम अति दरसु तुम्हारा। जस मरु धरनि[8] देव धुनि धारा॥
रामकृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा॥

---

१ पापों का समूह २ पानी ३ घास ४ फूल ५ पक्षी ६ दोना ७ इकट्ठा ८ मरुस्थल, मारवाड़।

दोहा—एह जिअ जानि सँकोचु तजि करिअ छोहु लखि नेहु ।
हमहिं[1] कृतारथ करन लगि, फल तृन अंकुर[2] लेहु ॥२५१॥

तुम्ह प्रिय पाहुन[3] बन पग धारे । सेवाजोगु न भाग न हमारे ॥
देब काह हम तुम्हहिं गोसाईं । ईंधनु पात किरात मिताईं ॥
एह हमारि अति बड़ि सेवकाई । लेहिं न बासन[4] बसन चोराई ॥
हम जड़ जीव जीव-गन-घाती[5] । कुटिल कुचाली कुमति कुजाती ॥
पाप करत निसि बासर जाहीं । नहिं पट कटि[6] नहिं पेट अघाहीं ॥
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ । एह रघु-नंदन दरस प्रभाऊ ॥
जब तें प्रभु-पद-पदुम निहारे । मिटे दुसह दुख दोष हमारे ॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे । तिन्ह के भाग सराहन लागे ॥

छंद—लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं ।
बोलनि मिलनि सिय राम-चरन सनेहु लखि सुखु पावहीं ॥
नरनारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा ।
तुलसी कृपा रघु-बंस-मनि की लोह लै नौका[7] तिरा ॥

सो०—बिहरहिं बन चहुँ ओर, प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब ।
जल ज्यों दादुर[8] मोर, भए पीन[9] पावस[10] प्रथम ॥२५२॥

पुरजन नारि मगन अति प्रीती । बासर जाहिं पलक सम बीती ॥
सीय सासु प्रति बेष* बनाई । सादर करै सरिस सेवकाई ॥
लखा न मरमु राम बिनू काहू । माया सब सियमाया माहू ॥
सीय सासु सेवा बस कीन्ही । तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्ही ॥
लखि सियसहित सरल दोउ भाई । कुटिल रानि पछितानि अघाई ॥
अवनि जमहि[11] जाँचति कैकेई । महि न बीचु[12] बिधि मीचु[13] न देई ॥

---

१ फलीभूत २ अंकुआ ३ अतिथि ४ पात्र ५ जीवों का नाश करने वाला ६ कमर में फेंट ७ नाव ८ मेंढक ९ हृष्ट पुष्ट १० बरसात ११ जमराज से १२ कटकर स्थान देना १३ मृत्यु * कई रूप ।

लोकहु बेद बिदित कबि कहहीं । राम-बिमुख थलु नरक न लहहीं ॥
एह संसउ सब के मन माहीं । राम गँवन[1] बिध अवध किनाहीं ॥

दो०—निसि न नींद नहिं भूख दिन, भरतु बिकल सुचि सोच ।
नीच कीच बिच मगन[2] जस, मीनहिं सलिल सकोच ॥२५३॥

कीन्ह मातुमिस काल कुचाली । ईति-भीति जस पाकतसाली[3] ॥
केहि बिधि होइ राम अभिषेकू । मोहि अवकलत[4] उपाउन एकू ॥
अवसि फिरहिं गुरु आयसु मानी । मुनि पुनि कहब रामरुचि जानी ॥
मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ । रामजननि हठ करबि कि काऊ ॥
मोहि अनुचर कर केतिक बाता । तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता ॥
जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू । हरगिरि[5] तें गुरु सेवक धरमू ॥
एकउ जुगुति न मन ठहरानी । सोचत भरतहिं रैन-बिहानी[6] ॥
प्रात नहाइ प्रभुहि सिर नाई । बैठत पठए रिषय बोलाई ॥

दो०—गुर-पद कमल प्रनामु करि, बैठे आयसु पाइ ।
बिप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आइ ॥२५४॥

बोले मुनिबर समय समाना । सुनहु सभासद भरत सुजाना ॥
धरमधुरीन भानुकुल भानू । राजा रामु स्वबस[7] भगवानू ॥
सत्यसंध पालक स्रुति सेतू । रामजनमु जग-मंगलहेतू ॥
गुर-पितु-मातु-बचन-अनुसारी । खल दलु-दलन देव-हित-कारी ॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु । कोउ न रामसम जान जथारथु[8] ॥
बिधिहरि हरु स स रबि दिसिपाला[9] । माया जीव करम कुलि काला[10] ॥
अहिप[11] महिप[12] जहँलगि प्रभुताई । जोग सिद्ध निगमागम गाई ॥
करि बिचार जिय देखहु नीके । रामरजाइ सीस सबही के ॥

---

१ जाना २ डूबी हुई ३ पकी हुई धान की खेती ४ दिखाई देती है, सूझता है ५ कैलाश पर्वत ६ रात्रि बीत गई ७ स्वाधीन ८ ठीक ठीक ९ दिगपाल १० सम्पूर्ण समय ११ शेषनाग १२ राजा ।

दो०—राखें राम रजाइ रुख, हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब, सब मिलि संमत सोइ ॥२५५॥

सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल-मोद-मूल मगु एकू॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ॥
सब सादर सुनि मुनि-बरबानी। नय[1] परमारथ स्वारथ सानी॥
उतरु न आव लोग भए भोरे। तब सिर नाइ भरत कर जोरे॥
भानुबंस भए भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे॥
जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता॥
दलि[2] दुख सजइ[3] सकल कल्याना। अस असीस राउर जग जाना॥
सोइ गोसाइँ बिधिगति जेहि छेकी[4]। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥

दो०—बूझिअ मोहि उपाउ अब, सो सब मोर अभाग।
सुनि सनेहमय-बचन गुर, उर उमगा अनुराग ॥२५६॥

तात बात फुरि राम कृपाहीं। रामबिमुख सिधि सपनेहु नाहीं॥
सकुचउँ तात कहत एक बाता। अरध तजहिं बुध सरबस जाता॥
तुम्ह कानन गवँनहु दोउ भाई। फेरिअहिं लषन सीय रघुराई॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद-परि-पूरन गाता॥
मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा। जनु जिय राउ[5] राम भए राजा॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुखसुख सब रोवहिं रानी॥
कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हे। फलु जग जीवन्ह अभिमत[6] दीन्हे॥
कानन करउँ जनम भरि बासू। एहि तें अधिक न मोर सुपासू॥

दो०—अंतरजामी रामुसिय, तुम्ह सरबग्य सुजान।
जौं फुर कहहु त नाथ निज, कीजिअ बचनु प्रमान ॥२५७॥

---

१ नीति २ नाश करना ३ बनाती है ४ उल्लंघन किया ५ राजा ६ शरथ जीवित हो गये ६ इच्छित।

भरत बचन सुनि देखि सनेहू । सभासहित मुनि भयेउ बिदेहू ॥
भरत-महा-महिमा जलरासी । मुनिमति ठाढ़ि तीर अबलासी[1] ॥
गा चह पार जतनु हिय हेरा[2] । पावति नाव न बोहित बेरा[3] ॥
अउर करहि को भरत बड़ाई । सर सीपी[4] की सिंधु समाई ॥
भरत मुनिहिं मनभीतर भाए । सहित समाज राम पहिं आए ॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु । बैठे सब सुनि मुनि-अनुसासनु ॥
बोले मुनिबरु बचन बिचारी । देस-काल-अवसर-अनुहारी ॥
सुनहु राम सरबग्य सुजाना । धरम-नीति-गुन ग्यान निधाना[5] ॥

दो०– सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ ।
पुरजन-जननी-भरत-हित, होइ सो कहिअ उपाय ॥२५८॥

आरत कहहिं बिचारि न काऊ । सूझ छुआरिहि आपुन दाऊ[6] ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ । नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ ॥
सब कर हित रुख राउरि राखे । आयसु किए मुदित फुर भाखे ॥
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई । माथे मानि करउँ सिख सोई ॥
पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं । सो सब भाँति घटिहि सेवकाईं ॥
कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाखा । भरत सनेह-बिचारु न राखा ॥
तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी । भरत-भगति-बस भइ मति मोरी ॥
मोरे जान भरत रुचि राखी । जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी[7] ॥

दो०– भरत बिनय सादर सुनिअ, करिअ बिचार बहोरि ।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि ॥२५९॥

गुर अनुराग भरत पर देखी । राम हृदय आनन्दु बिसेखी ॥
भरतहिं धरम-धुरन्धर जानी । निज सेवक तन-मानस-बानी ॥
बोले गुरु-आयसु-अनुकूला । बचन मंजु मृदु मंगलमूला ॥

---

१ स्त्री २ विचार किया ३ जहाज और बेड़ा ४ तालाब की सीप ५ घर ६ दाव ७ साक्षी (गवाही) ।

नाथ सपथ पितु-चरन-दोहाई । भयेउ न भुवन भरत सम भाई ॥
जे गुरु-पद-अंबुज-अनुरागी । ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी ॥
राउर जापर अस अनुरागू । को कहि सकइ भरत कर भागू ॥
लखि लघु बन्धु बुद्धि सकुचाई । करत बदन पर भरत बड़ाई ॥
भरतु कहहिं सो किएँ भलाई । अस कहि राम रहे अरगाई[1] ॥

दो०—तब मुनि बोले भरत सन, सब सँकोचु तजि तात ।
कृपासिन्धु प्रियबन्धु सन, कहहु हृदय कइ बात ॥२६०॥

सुनि मुनि बचन राम रुख पाई गुरु साहिब अनुकूल अघाई[2] ॥
लखि अपने सिर सबु छरु भारू[3] । कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू ॥
पुलकि सरीर सभा भए ठाढ़े । नीरज नयन नेह जल बाढ़े ॥
कहब मोर मुनि नाथ निबाहा[4] । एहि ते अधिक कहउँ मैं काहा ॥
मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ । अपराधिहु पर कोह[5] न काऊ ॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेखी । खेलत खुनस[6] न कबहूँ देखी ॥
सिसुपन तें परिहरेउ न संगू । कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू ॥
मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोही । हारेहु खेल जिताबहिं मोही ॥

दो०—महूँ सनेह-सँकोच-बस, सनमुख कहे न बयन ।
दरसन तृपित न आजु लगि प्रेम-पियासे नयन ॥ २६१ ॥

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा[7] । नीच बीचु जननी मिस पारा[8] ॥
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा । अपनी समुझि साधु सुधि[9] कोभा ॥
मातु मन्द मैं साधु सुचाली । उर अस आनत कोटि कुचाली ॥
फरइकि कोदव[10] बालि सुसाली । मुकताप्रसब[11] किसंबुकताली[12] ॥
सपनेहु दोस कलेसु न काहू । मोर अभाग-उदधि-अवगाहू[13] ॥

---

१ चुप हो २ अत्यंत ३ बोझ ४ निर्वाह किया ५ क्रोध ६ प्रतिहिंसा ७ लाड़ प्यार ८ माता के बहाने से ९ पण्डित १० कोदों ११ मोती पैदा होते हैं १२ तालाब की सीप १३ बुरे भाग्य का गहरा समुद्र ।

बिन समुझें निज-अघ-परिपाकू[1]। जारिउँ जाय[2] जननि कहि काकू[3]॥
हृदय हेरि हारेउ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहि भल मोरा॥
गुर गोसाइँ साहिब सियरामू। लागत मोहि नीक परिनामू॥
दो०—साधु सभा गुर-प्रभु-निकट कहउँ सुथल[4] सतिभाउ।
प्रेम-प्रपंच कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ॥२६२॥
भूपतिमरन प्रेम पनु राखी। जननी कुमति जगत सब साखी॥
देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं दुसह जर पुर-नर नारी॥
महीं सकल अनरथ कर मूला। सोसुनि समुझि सहिऊँ सब सूला[5]॥
सुनि बनगवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनिबेष लषन-सिय-साथा॥
बिन पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। संकर साखि रहेउँ एहि घाएँ॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयेउ न बेहू[6]॥
अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई[7]॥
जिन्हहिंनिरखिमगसाँपिनबीछीं। तजहिं बिषमबिषतामसतीछीं[8]॥
दो०—तेई रघुनंदनु लषनु सिय अनहित[9] लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैव सहावै काहि॥२६३॥
सुनिअतिबिकल भरत-बर-बानी। आरति[10] प्रीति बिनय-नय-सानी।
सोकमगन सब सभा खभारू[11]। मनहुँ कमल-बन परेउ तुषारू[12]॥
कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरतप्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी॥
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिन-कर-कुल-कैरव-बन-चंदू[13]॥
तात जाय जिअ करहु गलानी। ईस-अधीन जीवगति[14] जानी॥
तीनि काल त्रिभुवन मत मोरें। पुन्यसिलोक[15] तात तर[16] तोरें॥
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोक-परलोकु नसाई॥

---

१ अपने पापों का फल २ व्यर्थ ३ बुरा भला ( व्यंग ) कह कर ४ चित्रकूट पर ५ दुःख ६ छेद ७ जड़ जीव के कारण सभी सहना पड़ा ८ तेज, भयंकर ९ बुरे १० दुखपूर्ण ११ व्याकुल १२ पाला १३ सूर्यकुल रूपी कुमोदिनी के बन को चन्द्रमा के समान सुखदाई १४ कर्म-गति १५ पुण्यात्मा ( पुण्यलोक ) १६ नीचे।

दोषु देहिं जननिहिं जड़ तेई । जिन्ह गुर-साधु सभा नहिं सेई ॥

दो०—मिटिहहिं पाप प्रपंच [१] सब अखिल [२] अमंगल भार [३] ।
लोक-सुजसु परलोक-सुखु सुमिरत नाम तुम्हार ॥२६४॥

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी ॥
तात कुतरक करहु जनि जाएँ । बैर प्रेम नहिं दुरइ दुराएँ ॥
मुनिगन निकट बिहँग मृग जाहीं । बाधक बधिकि [४] बिलोकि पराहीं ॥
हित अनहित पसु पंछिउ जाना । मानुष-तनु गुन-ग्यान-निधाना ॥
तात तुम्हहिं मैं जानउँ नीके । करउँ काह असमंजस जी के ॥
राखेउ राय सत्य मोहि त्यागी । तनु परिहरेउ प्रेमपन लागी ॥
तासु बचन मेटत मन सोचू । तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू ॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा । अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा ॥

दो०—मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु ।
सत्य-संध-रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजु ॥२६५॥

सुर गन-सहित सभय [५] सुरराजू । सोचहिं चाहत होन अकाजू [६] ॥
बनत उपाय करत कछु नाहीं । राम सरन सब गे मन माहीं ॥
बहुरि बिचारि परसपर कहहीं । रघुपति भगत-भगति-बस अहहीं ॥
सुधि कर अंबरीष, दुरबासा । भे सुर सुरपति निपट निरासा [७] ॥
सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा । नरहरि किए प्रगट प्रहलादा ॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा । अब सुर-काज भरत के हाथा ॥

---

१ माया २ सम्पूर्ण ३ विघ्न का बोझ ४ बहेलिया इत्यादि ५ स + भय = डरा हुआ ६ काम बिगड़ना ७ "भरत भक्त हैं उन्हीं के अनुकूल राम चलेंगे" यह सोचकर··· ।

† हिरण्यकश्यप के पुत्र प्रहलाद जन्म से हरिभक्त थे । वह समझते थे कि ईश्वर सर्वत्र और रक्षक है । पिता के दारुण दुख देने पर भी भक्ति न छोड़ी । अन्त में पिता तलवार ले मारने दौड़ा । खम्भ में से नरसिंह रूप हरि निकले और दैत्यराज को मारडाला ।

आन उपाउ न देखिअ देवा । मानत रामु सुसेवक सेवा ॥
हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहि । निज गुन सील रामबस करतहि ॥

दो०—सुनि सुर मत सुरगुरु[1] कहेउ भल तुम्हार बड़भागु ।
सकल-सुमंगल-मूल जग, भरत-चरन-अनुरागु ॥२६६॥

सीतापति-सेवक-सेवकाई । कामधेनु-सुत-सरिस सुहाई ॥
भरतभगति तुम्हरे मन आई । तजहु सोचु बिधि बात बनाई ॥
देखु देवपति भरतप्रभाऊ । सहज-सुभाय बिबस रघुराऊ ॥
मन थिर[2] करहु देव डरु नाहीं । भरतहिं जानि रामपरिछाहीं ॥
सुनि सुरगुरु सुर संमत[3] सोचू । अंतरजामी प्रभुहि सँकोचू ॥
निज सिर भार भरतु जिअजाना । करत कोटि बिधि उर अनुमाना ॥
करि बिचारु मन दीन्हीं ठीका[4] । रामरजायसु आपन नीका[5] ॥
निज पन[6] तजि राखेउ पनु मोरा । छोहु सनेह कीन्ह नहिं थोरा ॥

दो०—कीन्ह अनुग्रह[7] अमित अति सब बिधि सीतानाथ ।
करि प्रनामु बोले भरतु जोरि जलज-जुग हाथ[8] ॥२६७॥

कहउँ कहावउँ का अब स्वामी । कृपा-अंबु-निधि अंतरजामी ॥
गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला । मिटी मलिन मन कलपित सूला ॥
अपडर डरेउँ न सोच समूले[9] । रबिहि न दोषु देव दिसि-भूले[10] ॥
मोर अभागु मातुकुटिलाई । बिधि-गति बिषम काल कठिनाई ॥
पाउँरोपि सबमिलि मोहि घाला[11] । प्रनतपाल पन आपन पाला[12] ॥
यह नइ रीति न राउरि होई । लोकहु बेद बिदित नहिं गोई[13] ।
जगु अनभल, भल एकु गोसाईं । कहिअ होइ भल कासु भलाई ॥

---

१ देवताओं के गुरु (बृहस्पति) २ (स्थिर) धीरज धरो ३ विचार ४ निश्चय किया ५ भलाई है ६ प्रण, पैज ७ कृपा ८ दोनों कमलरूपी हाथ ९ सोच का कारण नहीं है १० दिशा-भूल होने पर ११ नष्ट किया १२ शरणागत, पालक १३ छिपी हुई ।

देव देव-तरु सरिस सुभाऊ। सनमुखबिमुख नकाहुहि काऊ[१]॥
दो०—जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समनि[२] सब सोच।
मॉगत अभिमत पाव जग राउ रंक भल पोच[३] ॥२६८॥
लखि सब बिधि गुर-स्वामि-सनेहू। मिटेउ छोभ नहिं मन संदेहू॥
अब करुनाकर कीजिअ सोई। जनहित प्रभुचित[४] छोभ न होई॥
जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची[५]॥
सेवकहित साहिब-सेवकाई। करइ सकल सुख लोभ बिहाई[६]॥
स्वारथु नाथ फिरें सबही का। किएँ रजाइ कोटि बिधि नीका॥
एह स्वारथ-परमारथ-सारू। सकल सुकृत[७] फलसुगति-सिंगारू॥
देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनमाना॥

दो०—सानुज पठइअ मोहिं बन कीजिअ सबहिं सनाथ।
नतरु फेरिअहि बंधु दोउ नाथ चलउँ मैं साथ॥२६९॥
नतरु जाहिं बन तीनिउँ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुनासागर कीजिअ सोई॥
देव दीन्ह सब मोहि सिरभारू। मोरें नीति न धरम बिचारू॥
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू॥
उतरु देइ सुनि स्वामि-रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई॥
अस मैं अवगुन-उदधि-अगाधू[८]। स्वामि-सनेह सराहत[९] साधू॥
अब कृपाल मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाइ न पावा॥
प्रभु-पद-सपथ कहउ सतिभाऊ। जग मंगल हित एक उपाऊ॥
दो०—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देब।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट-अवरेब[१०]।२७०॥

---

१ कभी किसी के प्रतिकूल नहीं होता २ नष्ट करने वाली है ३ नीच ४ आपके हृदय में ५ नीच ६ छोड़कर ७ पुण्य ८ बुराइयों का अथाह समुद्र हूँ ९ सराहना करते हैं १० अनुचित उलक्षन।

भरतबचन सुचि सुनि सुर हरषे। साधु सराहिं सुमन सुर बरषे॥
असमंजसबस अवधनिवासी। प्रमुदित[1] मन तापस-बनबासी॥
चुपहि रहे रघुनाथ सँकोची। प्रभुगति देखि सभा सब सोची॥
जनक-दूत तेहि अवसर आए। मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए॥
करि प्रनाम तिन्ह रामु निहारे। बेषु देखि भए निपट दुखारे[2]॥
दूतन्ह मुनिबर बूझी बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता॥
सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चर बर[3] जोरे हाथा॥
बूझब राउर सादर साईं। कुसलहेतु सो भयेउ गोसाईं॥

दोहा—नाहिं तो कोसलनाथ के, साथ कुसल गइ नाथ
मिथिला[4] अवध बिसेष तें, जगु सब भयेउ अनाथ॥२७१॥

कौसलपति गति[5] सुनि जनकौरा[6]। भे सब लोक सोकबस बौरा॥
जेहि देखे तेहि समय बिदेहू। नामु सत्य अस लाग न केहू॥
रानि कुचालि सुनत नरपालहिं। सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहिं॥
भरत राज रघुबर-बन-बासू। भा मिथिलेसहि हृदय हराँसू[7]॥
नृप बूझे बुध-सचिव-समाजू। कहहु बिचार उचित का आजू॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ। चलिअ कि रहिअ न कह कछु कोऊ॥
नृपहि धीर धरि हृदय बिचारी। पठए अवध चतुर चर[8] चारी॥
बूझि भरत सतिभाउ कुभाऊ। आयेहु बेगि न होइ लखाऊ[9]॥

दोहा—गए अवध चर भरतगति, बूझि देखि करतूति।
चले चित्रकूटहि भरत, चार चले तिरहूत[10]॥२७२॥

दूतन्ह आइ भरत कै करनी। जनकसमाज जथामति बरनी॥
सुनि गुरु परिजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेह बिकल अति॥

---

१ प्रसन्न २ अत्यन्त दुखी हुए ३ चतुर दूत ४ जनकपुरी ५ राजा दशरथ की दशा ६ जनकपुरी के लोग ७ ( ह्रास ) दुखी ८ दूत ९ किसी को ज्ञात न हो १० जनकपुरी।

धरि धीरजु करि भरत बड़ाई। लिए सुभट साहनी[1] बोलाई ॥
घर पुर देस राखि रखबारे। हय गय रथ बहु जान[2] सँवारे ॥
दुघरी[3] साधि चले ततकाला। किश्र बिस्रामु न मग महिपाला ॥
भोरहिं श्राजु नहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सबु लागा ॥
खबरि लेन हम पठए नाथा। तिन्ह कहि श्रस महि नायेउ माथा।
साथ किरात छसातक दीन्हे। मुनिबर तुरत बिदा चर कीन्हे ॥

दोहा—सुनत जनक-आगमनु सबु, हरषेउ अवधसमाजु।
रघुनंदनहिं सकोचु बड़, सोचबिबसु सुरराजु ॥२७३॥

गरै गलानि[4] कुटिल कैकेई। काहि कहइ केहि दूषनु देई ॥
श्रस मन आनि मुदित नरनारी। भयेउ बहोरि रहब दिन चारी ॥
एहि प्रकार गत बासर[5] सोऊ। प्रात नहान लाग सब कोऊ ॥
करि मज्जन पूजहिं नरनारी। गनपति गौरि पुरारि[6] तमारी[7] ॥
रमा-रमन पद[8] बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजुल अंचल जोरी ॥
राजा राम जानकी रानी। आनँद अवधि अवध रजधानी ॥
सुबस बसउ फिरि सहित समाजा। भरतहिं रामु करहु जुबराजा ॥
एहि सुख सुधा सींचि सब काहू। देव देहु जग-जीवन-लाहू ॥

दोहा—गुरसमाज भाइन्ह सहित, रामराजु पुर होउ।
अछत राम राजा अवध, मरिश्र माँग सब्र कोउ ॥२७४॥

सुनि सनेहमय पुर-जन-बानी। निंदहिं जोग बिरति[9] मुनि ग्यानी ॥
एहि बिधि नित्य करम करि पुरजन। रामहिं करहिं प्रनामु पुलकि तन ॥
ऊँच नीच मध्यम नरनारी। लहहिं दरसु निज निज अनुहारी[10] ॥
सावधान[11] सबही सनमानहिं। सकल सराहत कृपानिधानहिं ॥

---

१ सेनापति २ सवारियाँ ३ द्विघटिका मुहूर्त ४ संकोच से गली जाती है ५ दिन बीतगया ६ पुर + अरि=महादेव ७ (तम = अँधेरा + अरि = बैरी) सूर्य ८ लक्ष्मी के स्वामी के पद ९ वैराग्य १० अनुकूल ११ सुचितता से।

लरिकाइहि तें रघुबरबानी । पालत नीति प्रीति पहिचानी ॥
सील-सँकोच-सिंधु रघुराऊ । सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ॥
कहत राम-गुन-गन अनुरागे । सब निज भाग सराहन लागे ॥
हम सम पुन्यपुंज जग थोरें । जिन्हहिं राम जानत करि मोरें ॥
दो०—प्रेममगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेसु ।
सहित सभा संभ्रम[1] उठेउ, रबि-कुल कमल-दिनेसु[2] ॥२७५॥

भाइ-सचिव-गुर-पुरजन साथा । आगे गवनु कीन्ह रघुनाथा ॥
गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं । करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं ॥
राम-दरस-लालसा-उछाहू । पथस्रम[3] लेस[4] कलेसु न काहू ॥
मन तहँ जहँ रघुबरबैदेही । बिनुमन बन दुख सुख सुधिकेही ॥
आवत जनकु चले एहि भाँती । सहित समाज प्रेम-मति माँती[5] ॥
आए निकट देखि अनुरागे । सादर मिलन परसपर लागे ॥
लगे जनक मुनि जन पद-बंदन । रिषिन्ह[6] प्रनामु कीन्ह रघुनंदन ॥
भाइन्ह सहित राम मिलि राजहिं । चले लेवाइ समेत समाजहिं ॥
दो०—आस्रम-सागर सांतरस. पूरन पावन पाथ ।
सेन मनहुँ करुना-सरित. लिए जाहिं रघुनाथ ॥ २७६ ॥
बोरति[7] ग्यान बिराग करारे । बचन ससोक मिलत नद नारे ॥
सोच उसास-समीर तरंगा[8] । धीरज-तट-तरु-बर[9] कर भंगा ॥
बिषम बिषाद तोरावति[10] धारा । भय भ्रम भँवर अवर्त[11] अपारा ॥
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा । सकहि न खेइ एक नहिं आवा ॥
बनचर कोल किरात बिचारे । थके बिलोकि पथिक[12] हिय हारे[13]

---

१ ससन्देह, घबड़ाकर २ सूर्यवंशरूपी कमल के लिये सूर्य के समान ३ रास्ते से उत्पन्न हुआ श्रम ४ थोड़ा ५ प्रेम से मतवाली बुद्धि ६ ऋषियों को ७ डुबोती जाती है ८ पवन से उठी हुई लहरें ९ धीरजरूपी किनारेपर के सुन्दर वृक्ष १० तेज ११ चक्कर १२ राहगीर १३ हृदय में हार गये ।

आस्रम-उदधि[१] मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई ॥
सोक बिकल दोउ राज-समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा ॥
भूप-रूप-गुन-सील सराही। रोवहिं सोकसिंधु अवगाही[२] ॥
छंद—अवगाहि सोक-समुद्र सोचहिं नारिनर ब्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं बामबिधि कीन्हों कहा।
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथ कोउ जो तरि सकइ सरित सनेह की ॥
सो०—किए अमित[३] उपदेस, जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन्ह।
धीरजु धरिअ नरेस, कहेउ बसिष्ठ बिदेहसन ॥ २७७ ॥
जासु ग्यानुरबि भवनिसि[४] नासा। बचन-किरनमुनि-कमल-बिकासा॥
तेहि कि मोह ममता निअराई[५]। एह सिय-राम-सनेह बड़ाई।
बिषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने ॥
राम-सनेह-सरस[६] मन जासू। साधु-सभा बड़ आदर तासू ॥
सोह न राम प्रेम बिनुग्यानू। करनधार[७] बिनुजिमि जल-जानू[८] ॥
मुनि बहु बिधि बिदेह समुझाए। रामघाट सब लोग नहाए।
सकल-सोक-संकुल नरनारी। सो बासर बीतेउ बिनु बारी।
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कवन बिचारू ॥
दो०—दोउ समाज निमिराज रघु-राज नहाने प्रात।
बैठे सब बट बिटप तर, मन मलीन कृसगात[९] ॥ २७८ ॥
जे महिसुर दसरथ-पुर-बासी। जे मिथिला-पति-नगर-निवासी ॥
हंस-बंस-गुर जनक पुरोधा[१०]। जिन्ह जगु मगु परमारथु सोधा॥

---

१ आश्रमरूपी समुद्र २ डूब रहे हैं ३ बहुत ४ संसार रूपी रात्रि ५ पास जासकती हैं ६ राम के स्नेह-जल से भरा हुआ ७ मल्लाह ८ नाव ९ दुबले शरीर वाले १० जनक के पुरोहित, शतानन्द जी।

ॐआश्रमरूप समुद्र जो शान्तरस रूपी जल से भरा हुआ था, सेना रूप नदी के मिलने से अशान्त होगया अर्थात् आश्रम में उथल पुथल मच गई।

लगे कहन उपदेस अनेका । सहित धरम नय बिरति बिबेका ॥
कौसिक कहि कहि कथा पुरानी । समुझाई सब सभा सुबानी ॥
तब रघुनाथ कौसकहिं कहेऊ नाथ कालि जल-बिनु[१] सब रहेऊ॥
मुनि कह उचित कहत रघुराई । गयेउ बीति दिन पहर अढ़ाई ॥
रिषि रुख लखि कह तिरहुतिराजू । इहाँ उचित नहिं असन-अनाजू[२]॥
कहा भूप भलि सबहि सुहाना । पाइ रजायुस चले नहाना ॥

दो०—तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार ।
लै आए बनचर बिपुल, भरिभरि काँवरि भार ॥२७९॥

कामद[३] भे गिरि रामप्रसादा । अवलोकत अपहरत[४] बिषादा॥
सर सरिता बन भूमि बिभागा । जनु उगुमत आनँद अनुरागा ॥
बेलि बिटप सब सफल सफूला । बोलत खग मृग अलि[५] अनुकूला[६]
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू । त्रिबिधि समीर[७] सुखद सब काहू॥
जाइ न बरनि मनोहरताई । जनु महि करति जनक पहुनाई ॥
तब सब लोग नहाइ नहाई । राम-जनक-मुनि-आयसु पाई ॥
देखि देखि तरुबर अनुरागे । जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥
दल फल मूल कंद बिधि नाना । पावन[८] सुन्दर सुधासमाना ॥

दो०—सादर सब कहँ रामगुरु, पठए भरि भरि भार ।
पूजि पितर सुर अतिथि गुर, लगे करन फलहार[९] ॥२८०॥

एहि बिधि बासर बीते चारी । रामु निरखि नरनारि सुखारी ॥
दुहुँ समाज असि रुचि मन माहीं । बिनु सिय-राम फिरब भल नाहीं ॥
सीताराम संग बनबासू । कोटि अमर-पुर-सरिस सुपासू ॥
परिहरि लषन-राम-बैदेही । जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही ॥
दाहिन दइउ होइ जब सबहीं । रामसमीप बसिअ बन तबहीं ॥

---

१. निर्जल, भूखे प्यासे २ अन्न का भोजन ३ इच्छा पूर्ण करने वाला ४ दूर कर देता है ५ भौंरा ६ सुहावने ७ हवा ८ पवित्र ९ फलों का आहार ।

मंदाकिनिमज्जनु तिहुँ काला। रामदरसु मुद-मंगल माला॥
अटनु[1] राम-गिरि-बन तापस-थल[2]। असनु अमियसम कंदमूल फल
सुखसमेत संबत[3] दुइ साता[4]। पलसम होहिं न जनिअहिं जाता॥

दो०—एहि सुख जोग न लोग सब कहहि कहाँ अस भागु।
सहज सुभाय समाज दुहुँ, राम-चरन-अनुरागु॥२८१॥

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं॥
सीयमातु तेहि समय पठाई। दासी देखि सुअवसरु आई॥
सावकास सुनि सब सिय सासू। आयेउ जनक-राज-रनिवासू॥
कौसल्या सादर सनमानी। आसन दिए समय सम आनी॥
सीलु सनेह सकल दुहुँ ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा[5]॥
पुलक सिथिल तनु बारि बिलोचन। महि नख लिखन लगीं सब सोचन।
सब सिय-राम-प्रीति किसि मूरति। जनु करुना बहु बेष बिसूरति[6]॥
सीयमातु कह बिधि बुधि बाँकी[7]। जो पयफेनु[8] फोर पबि-टाँकी[9]॥

दो०—सुनिअ सुधा देखिअहि गरल- सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक-उलूक-बक[10] मानस सकृत[11] मराल॥२८२॥

सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा। बिधिगति बड़ि बिपरीत बिचित्रा।
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बाल-केलि-सम[12] बिधिगतिभोरी
कौसल्या कह दोसु न काहू। करमबिबस दुख सुख छति-लाहू[13]
कठिन करमगति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकलफलदाता॥
ईस-रजाइ सीस सबही के। उतपति थिति[14] लय[15] बिषहु अमीके॥
देबि मोहबस सोचिअ बादी। बिधिप्रपंच अस अचल अनादी[16]॥

---

१ घूमना २ तपस्वियों के स्थान पर ३ वर्ष ४ चौदह ५ कठोर बज्र भी ६ दुःखी ७ अजीब ८ दूध के झाग ९ बज्र की टाँकी से १० कौआ, उल्लू और बगुला ११ अकेले एक १२ बालकों के खेल के सदृश १३ लाभ-हानि १४ (स्थित) १५ नाश १६ अ + चल (स्थिर) अन् + आदि (जिसका आरम्भ न हो)।

भूपति जियब मरब उर आनी । सोचिअ सखि लखि निज हित हानी
सीय मातु कह सत्य सुबानी । सुकृती अवधि अवध-पति रानी ॥
दो०—लषन राम सिय जाहु बन, भल परिनाम न पोचु ।
गहबरि हिय[१] कह कौसिला, मोहि भरत कर सोच ॥२८३॥

ईसप्रसाद असीस तुम्हारी । सुत सुतबधू देव सरि बारी ॥
रामसपथ मैं कीन्ह न काऊ । सो करि कहउँ सखी सतिभाऊ ॥
भरत सील गुन बिनय बड़ाई । भायप[२] भगति भरोस भलाई ॥
कहत सारदहु कर मति हीचे[३] । सागर सीप कि जाहिं उलीचे ॥
जानउँ सदा भरत कुलदीपा । बार बार मोहि कहेउ महीपा ॥
कसे कनक मनि पारिष पाए । पुरुष परिखियहि समय सुभाए ॥
अनुचित आजु कहब अस मोरा । सोक सनेह सयानप[४] थोरा ॥
सुनि सुर-सरि सम पावनि बानी । भई सनेह बिकल सब रानी ॥
दो०—कौसिल्या कह धीर धरि, सुनहु देवि मिथिलेसि ।
को बिबेक-निधि-बल्लभहि[५], तुम्हहिं सकइ उपदेसि ॥२८४॥

रानि राय सन अवसरु पाई । अपनी भाँति कहब समुझाई ।
रखिअहिं लषन भरत गवनहिं बन । जौं यह मत मानै महीपन ।
तो भल जतन करब सुबिचारी । मोरे सोच भरत कर भारी ॥
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं । रहइ नीक मोहि लागत नाहीं ॥
लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी । सब भईं मगन करुनरस रानी ॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि । सिथिल सनेह सिद्ध जोगी मुनि ॥
सबु रनिवासु बिथकि[६] लखि रहेऊ । तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ ॥
देवि दंड जुग जामिनि बीती । राम मातु सुनि उठी सप्रीती ॥
दो० - बेगि पाय धारिअ थलहिं, कह सनेह सतिभाय ।
हमरे तो अब ईसगति, के मिथिलेस सहाय ॥२८५॥

---

१ गद्‌गद् हृदय से २ भ्रातृस्नेह ३ हिचकिचाती है ४ चतुराई
५ विवेकनिधि जनक, उनकी प्रियतमा ६ शिथिल, चेतनारहित ।

लखि सनेह सुनि बचन बिनीता। जनक प्रिया गहि पाय पुनीता॥
देवि उचित असि बिनय तुम्हारी। दसरथ-घरिनि[१] राम-महतारी॥
प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं॥
सेवक राउ करम-मन बानी। सदा सहाय महेस-भवानी॥
रउरे[२] अंग जोगु जग को है। दीप सहाय कि दिनकर[३] सोहै॥
रामु जाइ बन करि सुर-काजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥
अमर नाग नर राम-बाहु-बल। सुख बसिहहिं अपने अपने थल॥
यह सब जागबलिक कहि राखा। देवि न होइ मुधा[४] मुनि भाखा॥

दो०—अस कहि पग-परि प्रेम अति, सियहिय बिनय सुनाइ।
सिय समेत सियमातु तब, चली सुआयसु पाइ॥२८६॥

प्रिय परिजनहिं मिली बैदेही। जो जेहि जोगु भाँति तेहि तेही॥
तापसबेष जानकी देखी। भा सब बिकल बिषाद बिसेखी॥
जनक राम-गुरु-आयसु पाई। चले थलहिं सिय देखी आई॥
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन प्रेम प्रान की॥
उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयेउ भूपमनु मनहुँ प्रयागू॥
सिय सनेह बटु[५] बाढ़त जोहा। तापर राम-प्रेम-सिसु सोहा*॥
‡चिरजीवी-मुनि[६] ग्यान बिकल जनु। बूड़त लहेउ बालअवलंबनु[७]॥

---

१ दशरथ की रानी २ आपके ३ ( दिन + कर ) सूर्य्य ४ असत्य ५ बट वृक्ष ६ मार्कण्डेय-मुनि ७ बालमुकुन्द का सहारा।

*जब महाप्रलय होती है तो समुद्र उमड़ कर सब जगह जल ही जल कर देते हैं—पृथ्वी उसमें डूब जाती है—प्रयाग का अक्षयबट बढ़ कर नहीं डूबता। उस बट के पत्ते पर ईश्वर बालरूप धरके रहता है। जनक के हृदय पर यही उपमा घटाई है। अर्थात् अनुराग समुद्र उमड़ा, राजा का मन प्रयाग, उसमें सीता का स्नेह बट और राम-प्रेम बालमुकुन्द हुआ।

‡मारकण्डेय अंगिरा के वंशज थे। ये तपस्या के बल से अमर होगए। इन्होंने

मोह-मगन मति नहिं बिदेह की। महिमा[1] सिय रघुबर-सनेह की॥

दो०—सिय पितु-मातु-सनेह-बस, बिकल न सकी सँभारि।
धरनि-सुता धीरजु धरेउ, समउ सुधरमु बिचारि॥२८७॥

तापसबेष जनक सिय देखी। भयउ पेम परितोष बिसेषी॥
पुत्र पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल[2] जगु कह सब कोऊ।
जिति सुरसरि कीरतिसरि तोरी। गवन कीन्ह बिधि अंड करोरी॥
गंग अवनिथल तीन बड़ेरे*। एहि किए साधु समाज घनेरे॥
पितु कह सत्य सनेह सुबानी। सीय सकुच महुँ मनहुँ समानी॥
पुनि पितु मातु लीन्हि उरलाई। सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई।
कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनी भल नाहीं॥
लखि रुख रानि जनायेउ राऊ। हृदय सराहत सीलु सुभाऊ।

दो०—बार बार मिलि भेंटि सिय बिदा कीन्हि सनमानि।
कही समय-सिर भरत गति, रानि सुबानि सयानि॥२८८॥

सुनि भूपाल भरत व्यवहारू। सोन-सुगंध सुधा ससि सारू॥
मूँदे सजल नयन पुलके तन। सुजसु सराहन लगे मुदित मन॥
सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव-बंध[3] बिमोचनि॥
धरम राज-नय ब्रह्म बिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू॥
सो मति मोरि भरत महिमाहीं। कहे काह छलि छुअत न छाहीं॥

---

एक बार भगवान् से उनकी माया के देखने को कहा। एक दिन अचानक समुद्र बढ़ने लगा और चारों ओर जल ही जल होगया। मुनि को तैरते तैरते एक बट का वृक्ष मिला उस पर चढ़ गये। वृक्ष के पत्ते पर एक बालक पड़ा था। उसकी साँस के साथ ऋषि भीतर घुस गये और वहीं सृष्टि देखने लगे। जब थोड़ी देर में बाहर आये तो न जल ही था न बालक।

१ प्रभुता २ श्वेत, उज्ज्वल ३ संसार के बन्धन (आवागमन इत्यादि)
*गंगा पर हरद्वार प्रयाग और समुद्रसंगम तीन बड़े स्थान हैं।

बिधि गनपति अहिपति सिव नारद। कबि कोबिद बुध बुद्धि-बिसारद॥
भरत चरित कीरति करतूती। धरमसील गुन बिमल बिभूती॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू॥
दो०--निरबधि[1] गुन निरुपम[2] पुरुष, भरतु भरतसम जानि।
कहिअ सुमेरु कि सेर सम, कबि-कुल-मति सकुचानि॥२८६॥

अगम सबहिं बरनत बरबरनी[3]। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं राम न सकहिं बखानी॥
बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ[4]। तिय जिय की रुचि लखि कह राऊ॥
बहुरहिं लषनु, भरतु, बन जाहीं। सब कर भल सब के मन माहीं॥
देबि परन्तु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी[5]॥
भरतु अवधि सनेह ममता[6] की। जद्यपि राम सीव समता[7] की॥
परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥
साधन सिद्धि रामपग-नेहू। मोहि लखि परत भरतमत एहू॥

दो०—भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं[8], मनसहुँ रामरजाइ।
करिअ न सोच सनेहबस, कहेउ भूप बिलखाइ॥२८७॥

राम-भरत-गुन गनत सप्रीती। निसि दंपतिहिं पलकसम बीती॥
राजसमाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे॥
गे नहाइ गुरु पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई॥
नाथ भरतु पुरजन महतारी। सोक बिकल बनबास दुखारी॥
सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिबस भए सहत कलेसू॥
उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर रउरे हाथा॥
अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि सीलु सुभाऊ॥
तुम्ह बिन राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहुँ राज समाजा॥

---

१ (निः + अवधि) अमित २ (निः + उपमा) अद्वितीय ३ सुन्दर कन्या ४ अच्छा स्वभाव, प्रेम ५ तर्क नहीं की जा सकती ६ प्रेम ७ तुल्यता ८ उल्लंघन न करेंगे।

दो०—प्रान प्रान के जीव के, जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सुहात गृह, जिन्हहिं तिन्हहिं बिधि बाम ॥२९१॥
सो सुख धरमु करमु जरि जाऊ। जहँ न राम-पद-पंकज भाऊ॥
जोगु[1] कुजोगु ग्यान अग्यानू। जहँ नहिं राम पेम परधानू[2]॥
तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेहीं। तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केहीं॥
राउर आयसु सिर सब ही के। बिदित कृपालहिं गति सब नीके॥
आपु आश्रमहिं धारिय पाऊ। भयेउ सनेह-सिथिल मुनिराऊ॥
करि प्रनामु तब राम सिधाये। रिषि धरि धीर जनक पहिं आए॥
रामबचन गुरु नृपहिं सुनाए। सील सनेह सुभाय सुहाए॥
महाराज अब कीजिअ सोई। सब कर धरमसहित हित होई॥
दो०—ग्यान-निधान सुजान सुचि, धरमधीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन, को समरथ एहि काल ॥२९२॥
सुनि मुनिबचन जनक अनुरागे। लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे[3]॥
सिथिल सनेह गुनत मन माहीं। आए इहाँ कीन्ह भल नाहीं॥
रामहिं राय कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेमप्रमाना[4]॥
हम अब बन तें बनहिं पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई॥
तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भए प्रेम बस बिकल बिसेखी॥
समउ समुझि धरि धीरज राजा। चले भरत पहिं सहित समाजा॥
भरत आइ आगें भइ लीन्हे। अवसर-सरिस सुआसन दीन्हे॥
तात भरत कह तिरहुतिराऊ[5]। तुम्हहिं बिदित रघुबीर सुभाऊ॥
दो०—राम सत्यब्रत धरमरत, सब कर सीलु सनेहु।
संकट सहत सँकोचबस, कहिअ जो आयसु देहु ॥२९३॥
सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी। बोले भरतु धीर धरि भारी॥
प्रभु प्रिय पूज्य पितासम आपू। कुल गुरु-समहित माय न बापू॥

---

१ योग साधना २ मुख्य उद्देश्य ३ स्नेह में डूब गया ४ प्रेम पूरा कर दिया ५ राजा जनक।

कौसिकादि मुनि सचिवसमाजू । ग्यान-अंबु-निधि[१] आपुन आजू ॥
सिसु सेवकु आयसु-अनुगामी[२] । जानि मोहि सिख देइअ स्वामी ॥
एहि समाज थल बूझब राउर । मौन[३] मलिन मैं बोलब बाउर[४] ॥
छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता । छमब तात लखि बाम[५] बिधाता ॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना । सेवा धरमु कठिन जगु जाना ॥
स्वामि धरम स्वारथहिं बिरोधू । बैर अंध[६] प्रेमहिं न प्रबोधू ॥

दो०—राखि रामरुख धरमुब्रतु पराधीन मोहि जानि ।
सब के संमत[७] सर्वहित, करिअ प्रेम पहिचानि ॥२९४॥

भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ । सहित समाज सराहत राऊ ॥
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे । अरथ अमित अति आखर[८] थोरे ।
ज्यों मुखु मुकुरु[९], मुकुरु निजपानी । गहि न जाइ अस अदभुत बानी ॥
भूपु भरतु मुनि साधु-समाजू । गे जहँ बिबुध-कुमुद-द्विज† राजू[१०] ॥
सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा । मनहुँ मीनगन नवजल-जोगा ॥
देव प्रथम कुल-गुर-गति देखी । निरखि बिदेह सनेह बिसेखी ॥
राम-भगति-मय भरतु निहारे । सुर स्वारथी हहरि हिय हारे ॥
सब कोउ राम पेममय पेखा । भए अलेख[११] सोच बस लेखा[१२] ॥

दो०—राम सनेह सकोच-बस कह ससोच सुरराजु ।
रचहु प्रपंचहिं पंच मिलि, नाहिं त भयउ अकाजु ॥२९५॥

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही । देवि ! देव सरनागत पाही[१३] ॥
फेरि भरतमति करि निज माया । पालु बिबुधकुल करि छलछाया ॥

१ ज्ञानरूपी समुद्र २ आज्ञाकारी ३ गूँगा ४ बावले की भाँति ५ प्रतिकूल ६ बैर से अन्धा ७ सलाह ८ अक्षर ९ दर्पण १० देवतारूप कुमुद बन के लिये चन्द्रमा ११ जो लिखने में न आवे १२ देवता १३ रक्षा करो ।

†द्विज, दोबारा जन्म; द्विजाति ( ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ) पक्षी, सर्प, दाँत और चन्द्रमा द्विज कहलाते हैं ।

बिबुधबिनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी।
मो सन कहहु भरत-मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सूमेरू॥
बिधि-हरि-हर माया बड़ी भारी। सोउ न भरतमति सकइ निहारी॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चाँदिनि कर कि चंडकर[1] चोरी॥
भरतहृदय सिय-राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनिप्रकासू॥
अस कहि सारद गइ बिधिलोका। बिबुधबिकल निसि मानहुँ कोका॥
दो०—सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।
रचि प्रपंचु माया प्रबल, भय भ्रम अरति उचाटु[2] ॥२९६॥
करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सबु काजु अकाजू॥
गए जनक रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबि-कुल दीपा[3]॥
समय समाज धरम अबिरोधा। बोले तब रघु बंस-पुरोधा॥
जनक भरत संबाद सुनाई। भरत कहाउत कही सुहाई॥
तात राम जस आयसु देहू। सो सबु करइ मोर मत एहू॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी॥
बिद्यमान[4] आपुन मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू[5]॥
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई॥
दो०—रामसपथ सुनि मुनि जनकु सकुचे सभासमेत।
सकल बिलोकत भरत मुखु बनइ न ऊतरु देत॥२९७॥
सभा सकुचबस भरत निहारी। रामबंधु धरि धीरज भारी॥
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा। बढ़त बिंधि जिमि घटज[6] निवारा॥*

---

१ सूर्य २ जी ऊबना ३ सूर्य कुल के दीपक ४ मौजूद ५ बुरा ६ अगस्त।

*एक समय सूर्य का तेज रोकने को बिन्ध्याचल बढ़ने लगा। उसके रोकने का कोई उपाय न देख कर देवताओं ने उसके गुरु अगस्त मुनि को उसके पास भेजा। ऋषि को देख कर बिन्ध्याचल ने साष्टांग प्रणाम किया और प्रार्थना की कि मेरे लिये उचित आज्ञा कीजिये। ऋषि ने कहा जब तक मैं दक्षिण दिशा से न लौटूँ तब तक तू ऐसा ही पड़ा रह। आज्ञा देकर वे फिर न लौटे। बिंध्याचल अब तक वैसा ही पड़ा है।

सोक कनकलोचन[1] मति छोनी[2] । हरी बिमल गुन गन जग जोनी ॥
भरतबिबेक बराह बिसाला । अनायास[3] उधरी तेहि काला※ ॥
कर प्रनामु सब कहँ कर जोरे । राम राउ गुरु साधु निहोरे ॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा । कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा ॥
हिय सुमिरी सारदा सुहाई । मानस तें मुख पंकज आई ॥
बिमल-बिबेक धरम-नय-साली । भरत भारती मंजु मराली ॥

दो०—निरखि बिबेक बिलोचनन्हि, सिथिल-सनेह समाजु ।
करि प्रनामु बोले भरत, सुमिरि सीय रघुराज ॥२६८॥

प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी । पूज्य परमहित अंतरजामी ॥
सरल सुसाहिब सील-निधानू । प्रनतपाल सर्वग्य सुजानू ॥
समरथ सरनागत हितकारी । गुनगाहकु अवगुन अघ-हारी ॥
स्वामि गोसाइहिं सरिस गोसाईं । मोहि समान मैं साँई दोहाई ॥
प्रभु-पितु-बचन मोहबस पेली[4] । आयेउँ इहाँ समाज सकेली ॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू । अमिअ अमर पद, माहुर मीचू ॥
राम रजाइ मेट मन माहीं । देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं ॥
सो मैं सब विधि कीन्हि ढिठाई । प्रभु मानी सनेह सेवकाई ॥

दो० —कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर ।
दूषन भे भूषन सरिस, सुजसु चारु चहुँ ओर ॥२६९॥

राउरि रीति सुबानि बड़ाई । जगत बिदित निगमागम गाई ॥
क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी । नीच निसील[5] निरीस[6] निसंकी[7] ॥

---

१ (कनक+लोचन) हिरण्याक्ष २ धरती ३ सहज ही में ४ न मान कर ५ शील रहित ६ अनाथ ७ निडर ।

※सृष्टि के आदि में हिरण्याक्ष दैत्य ने बल के घमंड में अपने साथ लड़ने वाली खोजते खोजते पृथ्वी को पाताल में रख दिया । इधर ब्रह्मा ने निराधार सृष्टि देखकर विष्णु भगवान् से प्रार्थना की । विष्णु बाराह रूप धर कर गये और उसे मार कर पृथ्वी को लौटा लाये ।

तेउ सुन सरन सामुहे[1] आये। सकृत[2] प्रनाम किये अनपाये ॥
देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुनु साधु-समाज बखाने ॥
को साहिब सेवकहि नेवाजी[3]। आपु समान साज सब साजी ॥
निजकरतूतिनसमुझिअ सपने। सेवक सकुच सोच उर अपने ॥
सो गुसाइँ नहिं दूसर कोपी[4]। भुजा उठाइ कहउँ पन-रोपी[5] ॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रवीना। गुनगति नट पाठक आधीना ॥

दो०—यों सुधारि सनमानि जन, किए साधु सिरमोर[6]।
को कृपालु बिनु पालिहइ, बिरदावलि[7] बरजोर ॥३००॥

सोक सनेह कि बाल सुभाएँ। आयेउँ लाइ रजायसु-बाएँ[8] ॥
तबहुँ कृपालु हेरि निज ओरा। सबहि भाँति भल मानेउ मोरा ॥
देखेउँ पाय सु-मंगल मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला ॥
बड़े समाज बिलोकेउँ भागू। बड़ी चूक साहिब अनुरागू ॥
कृपा अनुग्रह अंग अघाई। कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई ॥
राखा मोर दुलार गोसाईं। अपने सील सुभायँ भलाई ॥
नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोच बिहाई ॥
अबिनय बिनय जथारुचि बानी। छमिहि देव अति आरति जानी ॥

दो—सुहृद सुजान सुसाहिबहि, बहुत कहब बड़ि खोर।
आयसु देइअ देव अब, सबइ सुधारिअ मोरि ॥३०१॥

प्रभु-पद-पदुम-परागु दोहाई। सत्य सुकृत सुखसींव सुहाई ॥
सो करि कहउँ हिये अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की ॥
सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई ॥
अग्यासम न सुसाहिबसेवा। सो प्रसादु जन पावइ देवा ॥
असि कहि प्रेमबिबस भए भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी ॥

---

१ सामने २ एक बार ३ रक्षा करके ४ (का + अपि) कौन है ५ प्रतिज्ञा करके ६ शिरोमणि ७ (विरद + अवली) यश-समूह ८ उल्लंघन करके।

प्रभु-पद कमल गहे अकुलाई । समउ सनेहु न सो कहि जाई ॥
कृपासिंधु सनमानि सुबानी । बैठाए समीप गहि पानी ॥
भरत-बिनय सुनि देखि सुभाऊ । सिथिल सनेह सभा रघुराऊ ॥
छंद—रघुराउ सिथिल सनेहु साधु-समाज मुनि मिथिलाधनी ।
मन महुँ सराहत भरत भायप भगति की महिमा घनी[1] ॥
भरतहिं प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानस-मलिन[2] से ।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन[3] से ॥

सो०—देखि दुखारी दीन, दुहुँ समाज नरनारि सब ।
मघवा[4] महामलीन मुएहिं मारि मंगल चहत ॥३०२॥

कपट-कुचाल-सीवँ सुरराजू । पर-अकाज-प्रिय आपन काजू ॥
काकसमान पाक रिपु[5] रीती । छली मलीन कतहुँ न प्रतीती ॥
प्रथम कुमति करि कपटु सकेला[6] । सो उचाटु[7] सबके सिरमेला ॥
सुरमाया सब लोग बिमोहे[9] । रामप्रेम अतिसय न बिछोहे[10] ॥
भए उचाटबस मन थिर नाहीं । छन बन रुचि, छन सदन सुहाहीं ॥
दुबिध[11] मनोगति प्रजा दुखारी । सरित-सिंधु-संगम जनु बारी ॥
दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं । एक एक सन मरमु न कहहीं ॥
लखि हिय हँसि कह कृपानिधानू । सरिस स्वान मघवान जुबानू[12] ।

दो०—भरतु जनकु मुनिजन सचिव, साधु सचेत बिहाइ ।
लागि देव माया सबहिं जथाजोगु जनु पाइ ॥३०३।

कृपासिंधु लखि लोग दुखारे । निजसनेह सुर-पति छल भारे ॥
सभा राउ गुर महिसुर मंत्री । भरतभगति सब कइ मति जंत्री ॥
रामहिं चितवत चित्र लिखे से । सकुचत बोलत बचन सिखे से ॥

---

१ बहुत २ कपटी मन से ३ जैसे रात्रि आने पर कमल ४ इन्द्र ५ पाक। राक्षस का बैरी, इन्द्र ६ जमा किया ७ उच्चाटन ८ चपेक दिया ९ मोहित किया १० दूर हुए ११ दुविधा, दुचित्तता, चिंता १२ श्वन्, मघुवन्, युवन् तीनों शब्द एक से हैं अतः सबके स्वभाव भी समान ही हुए (यही आशय है) ।

भरत-प्रीति-नति बिनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥
जासु बिलोकि भगति लवलेसू[1]। प्रेममगन मुनिगन मिथलेसू॥
महिमा तासु कहइ किमि तुलसी। भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी॥
आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबिकुल-कानि[2] मानि सकुचानी॥
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मतिगति बाल-बचन की नाईं॥
दो०—भरत बिमल जसु बिमल बिधु सुमति चकोर-कुमारि।
उदित बिमल जनहृदय नभ, एकटक रही निहारि॥३०४॥

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ। लघुमति चापलता[3] कबि छमहूँ॥
कहत सुनत सतिभाउ भरत को। सीय-राम पद होइ न रत को॥
सुमिरत भरतहिं प्रेमु राम को। जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को॥
देखि दयालु दसा सबही की। राम सुजान जान जन जी की॥
धरमधुरीन धीर नयनागर। सत्य-सनेह-सील-सुख-सागर॥
देसु कालु लखि समउ समाजू। नीति-प्रीति-पालक रघुराजू॥
बोले बचन बानि-सरबसु से[4]। हित परिनाम सुनत ससि रसु से[5]॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक-बेद-बिद[6] परमप्रबीना॥
दो०—करम बचन मानस[7] बिमल, तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुर समाज लघु बंधु-गुन, कुसमय किमि कहि जात॥३०५॥

जानहु तात तरनि-कुल-रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती॥
समउ समाजु लाज गुरजन की। उदासीन हित अनहित[8] मन की॥
तुम्हहिं बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू॥
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसर अनुसारा॥
तात तात बिनु बात हमारी। केवल कुल-गुरु कृपा सँभारी॥

---

१ थोड़ा भी २ मर्यादा ३ चंचलता ४ सरस्वती के सर्वस्व के समान अर्थात् सुन्दर और सार्थक ५ अमृत सी मीठी ६ व्यवहार और वेद के जानने वाले ७ मन ८ वैरी।

नतरु प्रजा पुरजन परिवारू। हमहिं सहित सब होत खुआरू[१]॥
जौं बिनु अवसर अथव-दिनेसू[२]। जग केहि कहहु न होइ कलेसू॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा॥

दो०—राजकाज सब लाज पति, धरम धरनि धन धाम।
गुरप्रभाउ पालिहि सबहिं, भल होइहि परिनाम॥ ३०६॥

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुरप्रसाद रखवारा॥
मातु-पिता-गुरु-स्वामि निदेसू। सकलधरम धरनीधरु सेसू॥
सो तुम्ह कहहु करावहु मोहू। तात तरनि कुल पालक होहू॥
साधक एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी[३]॥
सो बिचारि सहि संकट भारी। करहु प्रजा परिवार सुखारी॥
बाँटी बिपति सबहि मोहि भाई। तुमहिं अवधि भरि बड़ि कठिनाई।
जानि तुम्हहिं मृदु कहहुँ कठोरा। कुसमय तात न अनुचित मोरा॥
होहिं कुठाँय[४] सुबंधु सहाये। ओड़ियहिं[५] हाथ असनि के घाये[६]॥

दो०—सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति की रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ॥ ३०७॥

सभा सकल सुनि रघुबर बानी। प्रेम-पयोधि अमिअ[७] जनु सानी।
सिथिल समाजु सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी॥
भरतहिं भयेउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुखु दोषू॥
मुखु प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू[८]॥
कीन्ह सप्रेम प्रनाम बहोरी। बोले पानि-पंकरुह[९] जोरी॥
नाथ भयेउ सुखु साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनमु भये को॥
अब कृपाल जस आयसु होई। करउँ सीस धरि सादर सोई॥

---

१ मट्टी पलीत २ सूर्य छिप गया ३ ऐश्वर्यरूपा त्रिवेणी ४ कुसमय पर ५ आगे बढ़ते हैं ( बचाने की कोशिश करते हैं ) ६ वज्र के घाव ७ प्रेमरूपी अमृत के समुद्र में ८ सरस्वती की कृपा होगई, बोलने लगा ९ कमलरूपी हाथ।

सो अवलंब देउ मोहिं देई। अवधि-पारु पावउँ जेहि सेई[१] ॥

दो०—देव देवअभिषेक हित, गुर-अनुशासन पाइ।
आनेउँ सब तीरथसलिलु तेहि कहँ काह रजाइ ॥३०८॥

एकु मनोरथ बड़ मन माहीं। सभय सकोच जात कहि नाहीं ॥
कहहु तात प्रभु आयसु पाई। बोले बानि सनेह सुहाई ॥
चित्रकूट सुचि थल तीरथ बन। खग मृग सरि सर निरझर[२] गिरिगन॥
प्रभु-पद-अंकित[३] अवनि बिसेखी। आयसु होइ तो आवौं देखी ॥
अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू। तात बिगत भय कानन चरहू[४]॥
मुनिप्रसादु बन मंगलदाता। पावन परम सुहावन भ्राता ॥
रिषिनायकु जहँ आयसु देही। राखेउ तीरथुजलु थल तेही ॥
सुनि प्रभु-बचन भरत सुख पावा। मुनि-पद-कमल मुदित सिरुनावा॥

दो०—भरत-राम-संवाद सुनि, सकल सुमंगल मूल।
सुर स्वारथी सराहि कुल, बरषत सुर-तरु-फूल ॥३०९॥

धन्य भरत जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत बरिआईं ॥
सुनि मिथिलेस सभा सब काहू। भरत-बचन सुनि भयेउ उछाहू ॥
भरत-राम-गुन-ग्राम[५] सनेहू। पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू ॥
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन। नेम पेमु अति पावन पावन ॥
मति अनुसार सराहन लागे। सचिव सभासद सब अनुरागे॥
सुनि सुनि राम-भरत संबादू। दुहुँ समाज हिय हरषु बिषादू ॥
राममातु दुखु-सुखु-सम जानी। कहि गुन राम प्रबोधी रानी ॥
एक कहहिं रघुबीर बड़ाई। एक सराहत भरत भलाई ॥

दो०—अत्रि कहेउ तब भरत सन, सैलसमीप सुकूप।
राखिअ तीरथतोय तहँ, पावन अमिय अनूप ॥३१०॥

भरत अत्रिअनुसासन पाई। जलभाजन सब दिए चलाई[६] ॥

---

१ सेवा करके २ झरना ३ आपके चरण-चिन्ह जिसपर हैं ४ विचरो ५ राम के गुण-समूह ६ भेज दिये।

सानुज आपु अत्रि मुनि साधू । सहित गए जहँ कूप अगाधू ॥
पावन पाथ पुन्य-थलु राखा । प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा ॥
तात अनादि-सिद्ध[1] थल एहू । लोपेउ काल बिदित नहिं केहू[2] ॥
तब सेवकन्ह सरस थलु देखा । कीन्ह सुजल हित कूप बिसेखा ॥
बिधिबस भयेउ बिस्व उपकारू । सुगम अगम अति धरम-बिचारू ॥
भरतकूप अब कहिहहिं लोगा । अति पावन तीरथ-जल जोगा ॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी । होइहिं बिमल करम मन बानी ॥

दो०—कहत कूप-महिमा सकल, गए जहाँ रघुराउ ।
अत्रि सुनायेउ रघुबरहिं, तीरथ-पुन्य-प्रभाउ ॥३११॥

कहत धरम इतिहास सप्रीती । भयेउ भोर निसि सो सुख बीती ॥
नित्य निबाहि भरतु दोउ भाई । राम-अत्रि-गुर-आयसु पाई ॥
सहित समाज साज सब सादे । चले राम बन-अटन[3] पयादे ॥
कोमल चरन चलत बिनु पनहीं । भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं ॥
कुस कंटक काँकरी कुराईं[4] । कटुक[5] कठोर कुबस्तु दुराईं ॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे । बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे ॥
सुमन बरषि सुर घन करि छाँही । बिटप फूल फल तृन मृदुताहीं[6] ॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी । सेवहिं सकल रामप्रिय जानी ॥

दो०—सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु[7], राम कहत जमुहात ।
राम-प्रान-प्रिय भरत कहुँ, एह न होइ बड़ि बात ॥३१२॥

एहि बिधि भरतु फिरत बन माँही । नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं ॥
पुन्य जलासय भूमि बिभागा । खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा ॥
चारु बिचित्र पवित्र बिसेखी । बूझत भरतु दिव्य सब देखी ॥
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ । हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ ॥

---

१ अन + आदि (जिसके आदि का पता नहीं) सिद्ध २ किसी को ३ वन में घूमना ४ ठूँठ ५ कड़वी ६ नर्म होने से ७ साधारणतया ।

कतहुँ निमज्जन[१], कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा[२] ॥
कतहुँ बैठि मुनिआयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई ॥
देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा। देहिं असीस मुदित बन देवा ॥
फिरहिं गए दिनु पहर अढ़ाई। प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई ॥
दो०—देखे थलु तीरथ सकल, भरत पाँच दिन माँझ।
कहत सुनत हरि-हर सुजसु गयेउ दिवस भइ साँझ ॥३१३॥
भोर न्हाइ सब जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तिरहुति-राजू ॥
भल दिन आजु जान मन माहीं। रामु कृपाल कहत सकुचाहीं ॥
गुर-नृप-भरत सभा अवलोकी[३]। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी।
सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची ॥
भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेखी ॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखी नाथ सकल रुचि मोरी ॥
मोहि लगि सबहि सहेउ संतापू[४]। बहुत भाँति दुखु पावा आपू ॥
अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई। सेवउँ अवध अवधि भरि जाई ॥
दो०—जेहि उपाय पुनि पायँ जनु, देखइ दीनदयाल।
सो सिख देइअ अवधि लगि. कोसलपाल कृपाल ॥३१४॥
पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेह सगाईं ॥
राउर-बदि[५] भल भव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परमपद-लाहू ॥
स्वामि सुजानु जानि सब ही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की ॥
प्रनतपालु पालहि सब काहू। देव दुहूँ दिसि ओर निबाहू ॥
अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो। किए बिचारु न सोच खरोसो[६] ॥
आरति मोर नाथ कर छोहू। दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठ हठि मोहू[७] ॥
यह बड़ दोष दूरि करि स्वामी। तजि सकोच सिखइअ अनुगामी ॥

---

१ स्नान करते हैं २ सुन्दर ३ देखी ४ दुःख ५ आपका कहना ६ सच्चा, थोड़ासा ७ मुझको बरबस ढीठ बना दिया (हठि का पाठान्तर अति)।

भरत बिनय सुन सबहि प्रसंसी। खीर-नीर-बिबरन-गति[१] हंसी ॥
दो०—दीनबन्धु सुनि बन्धु के बचन दीन छलहीन।
देस-काल-अवसरु सरिस, बोले रामु प्रबीन ॥३१५॥
तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहिं नृपहि घर बनकी ॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहिं तुम्हहिं सपनेहुँ न कलेसू ॥
मोर तुम्हार परम पुरषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु ॥
पितु आयसु पालहिं दुहुँ भाई। लोक बेद भल[२] भूप भलाई ॥
गुर-पितु-मातु-स्वामि-सिख पाले। चलेहु कुमग पग परहिं न खाले ॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई ॥
देसु कोसु पुरजन परिवारू। गुरपद-रजहिं लाग छरु भारू[३] ॥
तुम्ह मुनि-मातु सचिव सिखमानी। पालेहु पुहुमि[४] प्रजा रजधानी ॥
दो०—मुखिया मुखु सो चाहिए, खान पान कहुँ एक।
पाइल पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक ॥३१६॥
राज धरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माँह मनोरथ गोई ॥
बन्धु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती ॥
भरत सील गुर सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू ॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी[५] दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही ॥
चरनपीठ[६] करुना निधान के। जनु जुग जामिक[७] प्रजा प्रान के ॥
संपुट[८] भरत सनेह-रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन[९] के ॥
कुल कपाट कर कुसल[१०] करम के। बिमल-नयन[११] सेवा सुधरम के ॥
भरत मुदित अवलंब लहे तें। अस सुख जस सिय राम रहे तें ॥
दो०—माँगेउ बिदा प्रनामु करि, राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे[१२] अमर पति, कुटिल कुअवसर पाइ ॥३१७॥

---

१ दूध पानी के अलग करने की गति २ पाठान्तर—दुइ ३ बड़ा बोझ ४ धरती ५—६ खड़ाऊँ ७ पहरुआ ८ ढक्कन ९ रक्षार्थ १० उत्तम ११ सुन्दर नेत्र १२ उच्चाटन किया।

सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी। अवधि आस सम जीवन जी की॥
नतरु लषन-सिय राम बियोगा। हहरि मरत सबु लोग कुरोगा॥
रामकृपा अवरेब[1] सुधारी[2]। बिबुधधारि[3] भइ गुनद गोहारी[4]॥
भेंटत भुज भरि भाइ भारत सो। राम-प्रेम-रसु कहि न परत सो॥
तन मन बचन उमग अनुरागा। धीरधुरंधर धीरज त्यागा॥
बारिजलोचन मोचत[5] बारी। देखि दसा सुरसभा दुखारी॥
मुनिगन गुरु धुर[6] धीर जनक से। ग्यानअनल मनकसे कनकसे[7]॥
जे बिरंचि निरलेप[8] उपाये। पदुमपत्र[9] जिमि जग जलजाये[10]॥

दो०—तेउ बिलोकि रघुबर-भरत-प्रीति अनूप अपार।
भए मगन तन मन बचन सहित बिराग बिचार॥३१८॥

जहाँ जनक-गुर-गति-मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी॥
बरनत रघुबर-भरत-बियोगू। सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू॥
सो सकोच रस अकथ सुबानी। समउ सनेह सुमिरि सकुचानी॥
भेंटि भरतु रघुबर समुझाए। पुनि रिपुदवन हरषि हिय लाए॥
सेवक सचिव भरत-रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई॥
सुनि दारुन दुखु दुहुँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा॥
प्रभु-पद-पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि रामरजाई॥
मुनि तापस बन देव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी॥

दो०—लषनहिं भेंटि प्रनामु करि, सिर धरि सिय-पद-धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि सकल सुमंगल-मूरि॥३१९॥

सानुज राम नृपहि सिर नाई। कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई॥
देव दयाबस बड़ दुख पायेउ। सहित समाज काननहिं आयेउ॥

---

१ बिगड़ी हुई २ सुधर जाती है ३ देवताओं की धारणा (इच्छा) ४ गुहार, रक्षार्थ जोर से बुलाना ५ छोड़ना ६ धुरंधर ७ ज्ञानरूपी अग्नि से मन रूप सोने को तपाकर निर्दोष कर लिया था ८ माया से रहित ९ कमल के पत्ते। १० पानी से पैदा कमल।गुणद।।

पुर पगु धारिअ देइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किए हरि-हर सम जाने॥
सासुसमीप गए दोउ भाई। फिरे बंदि पग आसिष पाई॥
कौसिक बामदेव जाबाली। परिजन पुरजन सचिव सुचाली॥
जथाजोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किए सब सानुज रामा॥
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे॥

दो०—भरत-मातु-पद बंदि प्रभु, सुचि सनेह मिलि भेंटि।
बिदा कीन्हि सजि पालकी, सकुच सोच सब मेंटि॥३२०॥

परिजन मातु पितहिं मिल सीता। फिरी प्रान-प्रिय-प्रेम-पुनीता॥
करि प्रनामु भेंटी सब सासू। प्रीति कहत कबिहिय न हुलासू[1]॥
सुनि सिख अभिमत आसिष पाई। रही सीय दुहुँ प्रीति समाई॥
रघुपति पटु पालकी मँगाई। करि प्रबोधु सब मातु चढ़ाई॥
बार बार हिलि मिलि दुहुँ भाई। सम सनेह जननी पहुँचाई॥
साजि बाजि गज बाहन नाना। भूप-भरतदल कीन्ह पयाना॥
हृदय राम सिय लषन समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता[2]॥
बसह[3] बाजि गज पसु हिय हारे। चले जाहिं परबस मन मारे॥

दो०—गुर-गुरतिय-पद बंदि प्रभु, सीता लषन समेत।
फिरे हरष-बिसमय-सहित, आए परननिकेत॥३२१॥

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदय बड़ बिरह बिषादू॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी॥
प्रभु सिय लषन बैठि बट छाहीं। प्रिय-परिजन बियोग बिलखाहीं॥
भरत-सनेह-सुभाउ सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी॥
प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्रीमुख[4] राम प्रेमबस बरनी॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना॥

---

१ हर्ष २ अ + चेत (चैतन्यता रहित) बेहोश ३ बैल ४ स्वयं।

बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की । बरषि सुमन कहि गति घर घर की ॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह भरोसो । चले मुदित मन डर न खरोसो ॥

दो०—सानुज सीयसमेत प्रभु, राजत परनकुटीर ।
भगति ग्यान बैराग जनु, सोहत धरे सरीर ॥ ३२२॥

मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू । रामबिरह सब साजु बिहालू[१] ॥
प्रभु-गुन-ग्राम गुनत मन माहीं । सब चुपचाप चले मग जाहीं ॥
जमुना उतरि पार सब भयेऊ । सो बासरु[२] बिनु भोजन गयेऊ ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू । रामसखा सब कीन्ह सुपासू[३] ॥
सई उतरि गोमती नहाए । चौथे दिवस अवधपुर आए ॥
जनक रहे पुर बासर चारी । राज-काज सब साज सँभारी ॥
सौंपि सचिव गुर भरतहि राजू । तिरहुति चले साजि सब साजू ॥
नगर नारि नर गुर-सिख मानी । बसे सुखेन[४] राम-रजधानी ॥

दो०—रामदरस लगि लोग सब, करत नेम उपवास ।
तजि तजि भूषन भोग सुख, जिअत अवधि की आस ॥ ३२३॥

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे । निज निज काज पाइ सिख ओधे[५] ॥
पुनि सिख दीन्ह बोलि लघु भाई । सौंपी सकल मातु सेवकाई ॥
भूसुर बोलि भरत कर जोरे । कर प्रनामु बर बिनय निहोरे ॥
ऊँच नीच कारजु भल पोचू[६] । आयुस देब न करब सँकोचू ॥
परिजन पुरजन प्रजा बुलाए । समाधानु[७] करि सुबस[८] बसाए ॥
सानुज गे गुरगेह बहोरी । करि दंडवत कहत करि जोरी ॥
आयुसु होइ त रहउँ सनेमा[९] । बोले मुनि तन पुलकि[१०] सप्रेमा ॥
समुझब कहब करब तुम्ह जोई । धरमसारु[११] जग होइहि सोई ॥

---

१ घबड़ाये हुए २ दिन ३ आराम, सुभीता ४ सुख से ५ शिक्षानुसार काम करने लगे ६ बुरा ७ समझाकर संतुष्ट किया ८ अच्छी तरह ९ नियम और व्रत के साथ; १० रोमांचित होकर ११ धर्म का तत्त्व ।

दो०—सुनि सिख पाइ असीस बड़, गनक[1] बोलि दिन साधि।
सिंघासन प्रभुपादिका, बैठारे निरुपाधि[2] ॥३२४॥

राममातु गुरपद सिरु नाई। प्रभु पद पीठ-रजायसु पाई॥
नादिगाँव[3] करि परनकुटीरा। कीन्ह निवास धरम धुर धीरा॥
जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुससाथरी सवाँरी॥
असन बसन बासन व्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा॥
भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिनु तूरी॥
अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ-धन सुन धनदु[4] लजाई॥
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा[5]। चंचरीक[6] जिमि चंपक[7] बागा॥
रमाबिलासु[8] रामअनुरागी। तजत बमन[9] जिमि जनबड़ भागी॥

दो०—राम-प्रेम-भाजन भरत, बड़े न यहि करितूति।
चातक हंस सराहिअत, टेक बिवेक बिभूति॥ ३२४॥

देह दिनहुँदिन दूबरि होई। घटै तेजु बल मुखछबि सोई॥
नित नव राम-प्रेम पनु पीना[10]। बढ़त धरमदलु मन न मलीना॥
जिमि जल निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस[11] बनज बिकासे[12]॥
सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा॥
ध्रुव[13] बिस्वासु अवधि राका सी[14]। स्वामि सुरति सुरबीथि[15] बिकासी॥
राम प्रेम बिधु अचल अदोखा। सहित समाज सोह नित चोखा॥
भरत रहनि समुझनि-करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस-गनेस गिरा-गमु नाहीं॥

दो०—नित पूजत प्रभूपाँवरी, प्रीति न हृदय समाति।
माँगि माँगि आयसु करत राज काज बहु भाँति। ३२५॥

---

१ ज्योतिषी २ निर्विघ्न ३ अयोध्या के निकट कोई स्थान था ४ कुबेर ५ भोग विलास ६ भौंरा ७ चम्पा ८ लक्ष्मी सम्बन्धी भोग विलास ९ कै करना १० बढ़ना ११ बेंत बढ़ते हैं १२ कमल खिलते हैं १३ ध्रुव का तारा। १४ पूर्णिमासी १५ आकाश गंगा।

पुलकि गात हिय सियरघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू॥
लषन राम सिय कानन बसहीं। भरत भवन बसि तप तनु कसहीं॥
दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू॥
सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं॥
परम पुनीत[1] भरत-आचरनू[2]। मधुर मंजु मुद-मंगल-करनू॥
हरन कठिन कलि-कलुष-कलेसू[3]। महा-मोह-निसि दलन दिनेसू[4]॥
पाप-पुंज कुंजर-मृग-राजू। समन सकल संताप-समाजू॥
जनरंजन[5] भंजन भवभारू[6]। रामसनेह सुधाकर सारू॥

छंद—सिय-राम-प्रेम पियूष-पूरन[7] होत जनम न भरत को।
मुनि-मन अगम जम नियम सम दम त्रिषम ब्रत आचरत को॥
दुखदाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि रामसनमुख करत को॥

सो०—भरतचरित करि नेम तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय-राम-पद प्रेम अवसि होइ भव-रस बिरति॥३२६॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने
विमलविज्ञानवैराग्यसंपादनो नाम
द्वितीयः सोपानः समाप्तः।

---

१ अत्यन्त पवित्र २ भरत के आचरण ३ कलियुग के पापों और क्लेशों ४ सूर्य ५ भक्तों को प्रसन्न करने वाला ६ संसार की कठिनाइयों के नाशक ७ राम के प्रेम रूप अमृत से भरा हुआ।

# ❀ गूढ़ार्थ कोष ❀

४ अवस्था—१ जागृत, २ स्वप्न, ३ सुषुप्ति, ४ तुरीय

अष्ट-सिद्ध—१ अणिमा, २ महिमा, ३ लघिमा, ४ गरिमा, ५ प्राप्ति, ६ प्राकाम्य, ७ ईषत्व, ८ वशित्व।

४ आकार—१ जरायुज, २ अंडज, २ स्वेदज, ४ उद्भिज।

१२ आभरण—१ नूपुर, २ चूड़ी- ३ हार, ४ कंकण, ५ अँगूठी, ६ बाजूबंद, ७ बेसर, ८ बोरला, ९ टीका, १० शीशफूल, ११ तागड़ी, १२ कंठश्री।

४ आश्रम,-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास।

६ ऋतु—१ शिशिर, २ वसन्त, ३ ग्रीष्म, ४ वर्षा, ५ शरद, ६ हेमन्त।

कल्प-चारयुगों की, १ चौकड़ी. और हजार चौकड़ी, का एक कल्प।

३ गुण—रजोगुण, तमोगुण,सतोगुण।

चतुरंगिणी सेना—१ हाथी, २ रथ, ३ पैदल, ४ घोड़ा।

४ नीति—१ साम. २ दाम, ३ दंड ४ भेद।

४ युग—सतयुग, त्रेता द्वापर, कलियुग।

४ वर्ग—१ धर्म, २ अर्थ ३ काम, ४ मोक्ष।

४ रिपु—१ काम, २ क्रोध, ३ लोभ, ४ मोह।

४ वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

३ ताप-अध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक।

३ देव—ब्रह्मा, विष्णु, महेश।

अष्टयोग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ध्यान, धारणा, समाधि।

त्रिबिधि कर्म—संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण।

त्रिबिधि श्रोता—मुक्त, मुमुक्षु, विषयी,।

त्रिविध समीर—शीतल, मन्द, सुगन्ध ।

३ अवस्था—बालक, युवा, वृद्ध ।

३ ईषणा—१ लोकबड़ाई, २ धनराज्यादि, ३ स्त्रीपुत्र ।

८ दिक्पाल—पूर्व, से आदि लेकर इन्द्र, यम, वरुण, कुवेर, अग्नि । राक्षस, वायु, शिव ।

सप्त द्वीप—जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, पुष्कर, शाल्मली, गोमेद ।

ब्राह्मण के नवगुण—१ धृति, २ क्षमा, ३ दम, ४ अस्तेय, ५ शौच, ६ इन्द्रयनिग्रह, ७ ज्ञान, ८ विद्या, ९ सत्य ।

नवखण्ड—इलावृत्ति, रम्यक, हिरण्य, कुरु, हरि, भरत, केतुमाल, भद्राश्व, किंपुरुष ।

नवनिधि—१महापद्म, २ पद्म, ३ शंख, ४ मकर, ५ कच्छप, ६ मुकुन्द, ७ कुन्द, ८ नील, ९ खर्व ।

पंचतत्त्व—पृथ्वी,जल, तेज, वायु, आकाश, ।

पंचपवन—प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान ।

पंचमहायज्ञ—वेदपाठ, तर्पण, होम, बलिवैश्वदेव, अतिथिसत्कार ।

१८ पुराण—ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, श्रीमद्भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, लिंग, बाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़, ब्रह्माण्ड, ।

भक्ति—९ प्रकार की है श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्यभाव, और आत्मनिवेदन ।

मद—जातिमद, कुलमद, युवावस्थामद, रूपमद, विद्यामद, ज्ञानमद, ध्यानमद, धनमद, राज्यमद ।

योनि—८४ चौरासी लक्ष, इनमें से ९ लक्ष जलचर, २७ लक्ष स्थावर, ११ लक्ष कृमि, १० लक्ष पक्षी, २३ लक्ष चतुष्पद ४ लक्ष मनुष्य ।

३ राम—परशुराम, राम, बलराम ।

१४ लोक—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल भूलोक, भुवलोक, स्वर्गलोक, महल्लोक, जनलोक, तपःलोक, सत्यलोक ।

१४ विद्या—१ ब्रह्मज्ञान, २ रसायन, ३ श्रौतकथा, ४ वैद्यिक, ५ ज्योतिष, ६ व्याकरण, ७ धनुर्विद्या, ८ जल में तैरना, ६ सांगीत, १० नाटक, अश्वारोहण, १२ कोकशास्त्र, १३ चोरी १४ चतुरता ।

वेद—ऋग्वेद, युजुर्वेद, साम और अथर्वण ।

४ उपवेद—१ऋग्वेद का आयुर्वेद, २ युजुर्वेद का धनुर्वेद, ३ सामवेद, का गान्धर्व, ४ अथर्वण का स्थापत्य ।

६ वेदांग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ।

६ शास्त्र—साँख्य, योग, वेदान्त, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक ।

१६ शृङ्गार—१ अंगशुचि, २ मंजन, ३ दिव्यवस्त्र, ४ महावर, ५ केश-सँभारना, ६ माँगमें सिन्दुर, ७ ठोड़ी पर तिल, ८ माथे में बिन्दी, ६ मेहदी, १० अरगजा लगाना, ११ भूषण, १२ सुगन्ध, १३मुख-राग १४ दन्तराग, १५ अधरराग, १६ काजल ।

६ रस—कटु, तीखा अम्ल, मधुर, कषाय, लवण ।

सप्तऋषि—वशिष्ठ, अत्रि, कश्यप, विश्वामित्र, भरद्वाज, जमदग्नि गौतम ।

सप्तावरण—१ जल, २ पवन, ३ अग्नि, ४ आकाश, ५ अहंकार, ६ मह-त्तत्व, ७ प्रकृति ।

१६ पूजा ( षोडसपूजा ) आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, फिर से आचमन, स्नान, वस्त्राभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य वन्दना ।

मिलने का पता—

रत्नाश्रम आगरा ।